आचार्य पण्डित शिवदत्त मिश्र शास्त्री

प्राक्कथन

चौबीस हजार श्लोक वाले स्कन्द पुराणान्तर्गत रेवाखण्ड-स्थित सत्यनारायण व्रत-कथा की प्राचीनता एवं सफलता सर्वविदित है। प्रस्तुत व्रत एवं कथा श्रवण कर असंख्य भक्त-भावुक नर-नारी सफल मनोरथ हो विश्व के समस्त सुख-सौभाग्य का उपभोग करते हुए अन्त में इस भव-सागर से मुक्त हुए।

भगवान् सत्यदेव की असीम अनुकम्पा के फल से ही काशीपुरी का रहनेवाला अति निर्धन शतानन्द नामक ब्राह्मण को प्रचुर धन-प्राप्ति, भगवान् का दर्शन एवं अगले जन्म में सुदामा ब्राह्मण के रूप में उत्पन्न होकर रुक्मिणी-वल्लभ भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना कर मोक्षपद प्राप्त करना, धनकष्टी लकड़हारा को विपुल धन-सम्पत्ति की प्राप्ति तथा अगले जन्म में निषादराज नाम से प्रसिद्ध होकर मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम की अविरल भक्ति द्वारा सायुज्य मोक्ष प्राप्त करना, सत्यवादी एवं जितेन्द्रिय उल्कामुख राजा को भी अपर-जन्म में दशरथ रूप से उत्पन्न होकर श्रीरंगनाथ की कृपा से वैकुण्ठलोक में निवास करना, धार्मिक साधु (बनिया) को दण्डी वेष में भगवान् सत्यदेव का साक्षात्कार एवं धन के मद में भगवान् को भूल जाने का दुष्परिणाम तथा अगले जन्म में

मोरध्वज नाम से प्रसिद्ध हो आरे से अपने पुत्र के दाहिने अंग को चीर सिंह को प्रदान कर मोक्षप्रद प्राप्त करना तथा महाराज तुंगध्वज द्वारा सत्यदेव के प्रसाद परित्याग से धन-जन की क्षति एवं पुन: भगवान् की कृपारूपी प्रसाद से नष्ट सम्पत्ति की प्राप्ति और दूसरे जन्म में स्वायम्भू मनु के रूप में उत्पन्न होकर समस्त भागवत श्रवणकर वैकुण्ठलोक प्राप्त करना आदि कथा प्रस्तुत पुस्तक में वर्णित है। इन कथाओं से विशेष शिक्षा मिलती है कि भगवान् को कभी नहीं भूलना एवं सच्ची प्रतिज्ञा का पालन करना प्राणी मात्र का परम कर्तव्य है।

कुछ लोग ऐसी शंका करते हैं कि, शतानन्द ब्राह्मण, लकड़हारा एवं साधु (बनिया) ने कौन-सी कथा सुनी थी? इसका उत्तर यह है कि उन लोगों ने 'सत्यव्रतरूपी सनातन:' के अनुसार सत्यरूपी व्रत का पालन करते हुए श्रद्धा-पूर्वक भगवान् सत्यदेव का पूजन किया था, जिससे वे सफल मनोरथ हो ऐहिक सुख का उपभोग कर अन्त में मोक्ष पद प्राप्त किये।

यद्यपि सत्यनारायण व्रत-कथा के अनेक संस्करण प्रकाशित हुए हैं, किन्तु सभी में शुद्धता, सरल-सुबोध एवं परिमार्जित हिन्दी टीका का आधुनिक शैली में संशोधन-सम्पादन की कमी है, जो साधारण पाठकों के लिए सुविधाजनक नहीं है। इस दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक अब तक की प्रकाशित पुस्तकों की परम्परा में सर्वदा नवीन सिद्ध हुई है। यही कारण है कि, इतने कम समय में भी इसके अनेकों संस्करण प्रकाशित हो गये फिर भी पाठक-वर्ग की माँग सर्वदा बनी रहती है।

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी
२५ अगस्त, १९९७ ई०

–शिवदत्त मिश्र शास्त्री
वाराणसी

सत्यनारायण व्रत-कथा की पूजन-सामग्री

२) अबीर	गेहूँ, मूँग, उड़द, तिल,	केशर, चन्दन	चौकी १
२) बुक्का	कँगुनी) २५० ग्राम	धोती १, गमछा १	पीढ़ा १
५) रोरी	सुवर्ण का टुकड़ा ५	जनेऊ २ जोड़ा	स्वर्णप्रतिमा (विष्णु या
नारा १ कलावा	कलश ताँबे का ५	धूपबत्ती १ पैकेट	शालग्रामजी की)
२) रूई	ताँबे का ढकना ५	अतर का फाहा १	केला का खम्भा ६ बड़ा
२) हरदी की बुकनी	फूल-माला	दीपबत्ती १५	तोरण
२) मेंहदी की बुकनी	तुलसी, दूर्वा	५) कपूर, दियासलाई-१	हँड़िया, कसोरा, दीया
२) सिन्दूर	दूध गाय का	पेड़ा ५०० ग्राम	वेदी के लिए बालू
५) सर्वौषधि	दही गाय के दूध का	बतासा २५० ग्राम	शाकला (तिल, जव,
पंचरत्न की पुड़िया ५	शुद्ध घृत २५० ग्राम	ऋतुफल (केला, सेव आदि)	चावल, चीनी, घृत)
पंचपल्लव (आम, पीपल,	शहद ५० ग्राम	पान १० पत्ता	परास की लकड़ी
पाकड़, बड़, गूलर)	चीनी १। किलो	सोपाड़ी (खड़ी) १५	गंगाजल
सप्तमृत्तिका	आटा गेहूँ का १। किलो	नारियल २	*
सप्तधान्य–(चावल, जव	चावल १। किलो	मलमल का कपड़ा २।। गज	

।। श्रीगणेशाय नमः ।।

श्रीसत्यनारायणपूजन-विधिः

संक्रान्ति, पूर्णिमा, अमावस्या अथवा अन्य किसी दिन, पर्व-विशेष पर भगवान् श्री सत्यनारायण की कथा श्रवण एवं पूजन के लिये व्रती (यजमान) नित्यकर्म से निवृत्त होकर शुद्ध धुला वस्त्र या नवीन वस्त्र धारण कर पूजन-कथा के स्थान पर कुशासन/उर्णासन पर पूर्वमुख अथवा उत्तर मुख बैठकर '**ॐ केशवाय नमः, ॐ नारायणाय नमः, ॐ माधवाय नमः,**' कहकर तीन बार आचमन कर हाथ धोकर कुश निर्मित पवित्री को धारण करें—

ॐ पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यछिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छकेयम्।।

पश्चात् प्राणायाम कर जल से अपने ऊपर एवं समस्त उपस्थित सामग्री का सिंचन करें—**ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा। यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः।।**

हाथ में अक्षत-पुष्प लेकर मांगलिक मन्त्रों का पाठ करें।

ॐ आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतो ऽदब्धसोऽ अपरीतास ऽउद्भिदः। देवा नो यथा सदमिद्वृधे ऽअसन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे।। १ ।। देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानाठं. रातिरभिनो निवर्त्तताम्। देवानाठं. सख्यमुपसेदिमा व्वयं देवा न ऽआयुः प्रतिरन्तु जीवसे।।२।। तान्पूर्व्वया निविदा हूमहे व्वयं भगम्मित्रमदितिं दक्षमस्त्रिधम्। अर्य्यमणं व्वरुणठं. सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्क्करत्।।३।। तन्नो व्वातो मयोभु व्वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः। तद्ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्णया युवम्।।४।। तमीशानं जगतस्तस्थुषष्पतिं धियञ्जिन्वमवसे

हूमहे व्वयम्। पूषा नो यथा व्वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये।।५।।

स्वस्ति न इन्द्रो व्वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।।६।। पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभं य्यावानो विदथेषु जग्मयः। अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवाऽअवसाऽऽगमन्निह।।७।। भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाठं. सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः।।८।। शतमिन्नु शरदोऽअन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्। पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः।।९।। अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्म्माता स पिता स पुत्रः। विश्वे देवाऽअदितिः पञ्चजनाऽअदितिर्ज्जातमदितिर्ज्जनित्वम् ।।१०।। द्यौः शान्तिरन्तरिक्षठं. शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः व्वनस्पतयः शान्तिर्व्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व्वठं. शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ।।११।। यतो यतः समीहसे ततो नोऽभयं कुरु। शन्नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः।।१२।।

ॐ गणानां त्वा गणपतिठं. हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिठं. हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिठं. हवामहे व्वसो मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्।।१३।।

ॐ अम्बे-ऽअम्बिके-ऽम्बालिके न मा नयति कश्चन। ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्।।१४।।

ॐ लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः। उमामहेश्वराभ्यां नमः। वाणीहिरण्यगर्भाभ्यां नमः। शचीपुरन्दराभ्यां नमः। माता-पितृचरणकमलेभ्यो नमः। इष्टदेवताभ्यो नमः। कुलदेवताभ्यो नमः। ग्रामदेवताभ्यो नमः। स्थानदेवताभ्यो नमः। वास्तुदेवताभ्यो नमः। सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो नमः। सिद्धिबुद्धि-सहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः। आदित्यादि-नवग्रहदेवेभ्यो नमः। एतत्कर्मप्रधानदेवताभ्यो नमः।

विश्वेशं माधवं ढुण्ढिं दण्डपाणिं च भैरवम्। वन्दे काशीं गुहा गङ्गां भवानीं मणिकर्णिकाम्॥१॥
वक्रतुण्ड महाकाय कोटिसूर्यसमप्रभ। निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा॥२॥
सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः। लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः॥३॥
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः। द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि॥४॥
विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा। संग्रामे सङ्कटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते॥५॥
शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम्। प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोप-शान्तये॥६॥
अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुरासुरैः। सर्वविघ्नहरस्तस्मै गणाधिपतये नमः॥७॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके। शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥८॥
सर्वदा सर्वकार्येषु नास्ति तेषाममङ्गलम्। येषां हृदिस्थो भगवान् मङ्गलायतनं हरिः॥९॥
तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव। विद्याबलं दैवबलं तदेव लक्ष्मीपते तेऽङ्घ्रियुगं स्मरामि॥१०॥
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः। येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः॥११॥
यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः। तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥१२॥
अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥१३॥
स्मृतं सकलकल्याणभाजनं यत्र जायते। पुरुषं तमजं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम्॥१४॥
सर्वेष्वारम्भकार्येषु त्रयस्त्रिभुवनेश्वराः। देवादिशन्तु नः सिद्धिं ब्रह्मेशानजनार्दनाः॥१५॥
विनायकं गुरुं भानुं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान्। सरस्वतीं च प्रणम्यादौ सर्वकार्यार्थसिद्धये॥१६॥

पुनः हाथ में पुष्प, कुश, अक्षत, द्रव्य, दूर्वा, जल लेकर संकल्प करें।

सङ्कल्प—ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य अद्य श्रीब्रह्मणोऽह्नि द्वितीयपरार्धे विष्णुपदे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे युगे कलियुगे कलिप्रथमचरणे भूर्लोके जम्बूद्वीपे भारतवर्षे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशे बौद्धावतारे अमुकनामसंवत्सरे श्रीसूर्ये अमुकायने अमुकऋतौ महामाङ्गल्यप्रद-मासोत्तमे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकराशिस्थितेषु सूर्यादिषु अमुकगोत्रः अमुकशर्माऽहं ममाऽऽत्मनः श्रुति-स्मृति-पुराणोक्त-फलप्राप्त्यर्थं सकल-दुरितोपशमनसर्वापच्छान्तिपूर्वक-समस्त-मनोरथ-सिद्ध्यर्थं यथा-सम्पादित-सामग्र्या गणेश-गौरी-वरुण-गणपत्यादि-पञ्चलोकपाल-सूर्यादिनवग्रहदेवता-पूजन-पूर्वकं पूर्वाङ्गीकृतं श्रीसत्यनारायण-पूजनपूर्वकं व्यासपूजनं कथाश्रवणं च करिष्ये। तत्राऽऽदौ निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं गणेशाम्बिकयोः पूजनं करिष्ये।

इस प्रकार क्रम से गणेश-गौरी-वरुण-गणपत्यादि-पञ्चलोकपाल-सूर्यादिनवग्रहपूजन करके, श्रीसत्यनारायण-पूजा करें।

गणेश-गौरी पूजन

हाथ में अक्षत-पुष्प लेकर श्रीगणेशजी व माता गौरी देवी का ध्यान करें—'ॐ गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्॥' तथा 'ॐ अम्बे ऽअम्बिके ऽम्बालिके न मा नयति कश्चन। ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्॥'

आवाहयामि पूजार्थं रक्षार्थं च मम क्रतोः। इहागत्य गृहाणत्वं पूजां यागं च रक्ष मे।। कहकर आवाहन-स्थापन करें तथा पंचोपचार यो षोडशोपचार से पूजन करे। **'गणेशाम्बिकायां नमः', एतानि पाद्या-ऽर्घ्याचमनीयस्नानीय-पुनराचमनीयानि समर्पयामि। गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, अक्षतान् समर्पयामि। गणेशाम्बिकाभ्यां ऋतुकालोद्भव-पुष्पाणि समर्पयामि। गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, धूपमाघ्रापयामि, प्रत्यक्षदीपं प्रदर्शयामि, हस्तप्रक्षालनं नैवेद्यं निवेदयामि, आचमनीयं मध्ये पानीयम्, उत्तरापोषणम्, हस्तप्रक्षालनम्, मुखवासार्थे पूगीफल-ताम्बूलम्, दक्षिणाम्, प्रदक्षिणाम्, आरार्तिक्यम्, मन्त्र-पुष्पाञ्जलिम्, विशेषार्घ्यं प्रार्थनां च समर्पयामि।** हाथ में जल लेकर **अनया पूजया गणेशाम्बिके प्रीयेतां न मम** कहकर भूमि पर छोड़ दे।

कलश-पूजन

'ॐ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशꣳ स मा न आयुः प्रमोषीः।।' मन्त्र से कलश पर वरुण का आवाहन कर पंचोपचार से पूजन करे।

नवग्रह-पूजन

'ॐ ग्रहा ऊर्जाहुतयो व्यन्तो विप्राय मतिम्। तेषां विशिप्रियाणां वोऽहमिषमूर्जꣳ समग्रभमुपयाम-गृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम्।।' मन्त्र पढ़कर सूर्यादि नवग्रह का आवाहन-स्थापन करें।

'ॐ सूर्याय नमः, सूर्यमावाहयामि स्थापयामि। ॐ चन्द्राय नमः, चन्द्रमावाहयामि स्थापयामि। ॐ भौमाय

नमः, भौममावाहयामि स्थापयामि। ॐ बुधाय नमः, बुधमावाहयामि स्थापयामि। ॐ बृहस्पतये नमः, बृहस्पतिमावाहयामि स्थापयामि। ॐ शुक्राय नमः, शुक्रमावाहयामि स्थापयामि। ॐ शनैश्चराय नमः, शनैश्चरमावाहयामि स्थापयामि। ॐ राहवे नमः, राहुमावाहयामि स्थापयामि। ॐ केतवे नमः, केतुमावाहयामि स्थापयामि।' पढ़कर पंचोपचार या षोडशोपचार से पूजन करें।

सत्यनारायणपूजन

हाथ में पुष्प लेकर भगवान् का ध्यान करे—

ध्यायेत् सत्यं गुणातीतं गुणत्रयसमन्वितम्। लोकनाथं त्रिलोकेशं कौस्तुभाभरणं हरिम्।।
नीलवर्णं पीतवस्त्रं श्रीवत्सपदभूषितम्। गोविन्दं गोकुलानन्दं ब्रह्माद्यैरपि पूजितम्।।

आवाहन— **आगच्छाऽऽगच्छ देवेश! तेजोराशे जगत्पते!। क्रियमाणां मया पूजां गृहाण सुरसत्तम।।**

तुलसीदल लेकर आसन दें— **नानारत्नसमायुक्तं कार्तस्वरभूषितम्। आसनं देवदेवेश! प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम्।।**

अर्घ्य— **नारायण! नमस्तेऽस्तु नरकार्णवतारक!। पाद्यं गृहाण देवेश! मम सौख्यं विवर्धय।।**

आचमन— **मन्दाकिन्यास्तु यद्वारि सर्वपापहरं शुभम्। तदिदं कल्पितं देव! सम्यगाचम्यतां त्वया।।**

पंचामृत स्नान— **स्नानं पञ्चामृतं देव! गृहाण पुरुषोत्तम!। अनाथनाथसर्वज्ञ! गीर्वाण-प्रणतिप्रिय!।।**

शुद्ध स्नान जल— **गङ्गा च यमुना चैव गोदावरी सरस्वती। नर्मदा सिन्धुकावेरी स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्।।**

वस्त्र— **वेदसूक्त-समायुक्ते यज्ञसामसमन्विते। सर्ववर्णप्रदे देव! वाससी प्रतिगृह्यताम्।।**

यज्ञोपवीत— ब्रह्म-विष्णु-महेशेन निर्मितं ब्रह्मसूत्रकम्। यज्ञोपवीतदानेन प्रीयतां कमलापतिः।।
उत्तरीय वस्त्र चढ़ाकर एक आचमनी जल प्रदान करे।
चन्दन— श्रीखण्डं चन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम्। विलेपनं सुरश्रेष्ठ! चन्दनं प्रतिगृह्यताम्।।
पुष्पमाला— मल्लिकादि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो!। मयाहृतानि पूजार्थं पुष्पाणि प्रतिगृह्यताम्।।
धूप— वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः। आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्।।
दीप— आज्यं च वर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया। दीपं गृहाण देवेश! त्रैलोक्यतिमिरापहम्।।
नैवेद्य— घृतपक्वं हविष्यान्नं पायसं च स-शर्करम्। नानाविधं च नैवेद्यं विष्णो! मे प्रतिगृह्यताम्।।
आचमन जल— सर्वपापहरं दिव्यं गाङ्गेयं निर्मलं जलम्। आचमनं मया दत्तं गृह्यतां पुरुषोत्तम!।।
फल— इदं फलं मया देव! स्थापितं पुरत स्तव। तेन मे सफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनिजन्मनि।।
पूगीफल-ताम्बूल— लवङ्ग-कर्पूरसंयुक्तं ताम्बूलं सुरपूजितम्। प्रीत्या गृहाण देवेश! मम सौख्यं विवर्द्धय।।
दक्षिणा— हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः। अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे।।
आरती— चतुर्वर्तिसमायुक्तं घृतेन च सुपूजितम्। नीराजनेन सन्तुष्टो भवत्येव जगत्पतिः।।
प्रदक्षिणा— यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च। तानि तानि विनश्यन्ति प्रदक्षिणां पदे पदे।।
पुष्पांजलि— शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं, विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम्।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं, वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम्।।

पुनः हाथ में जल लेकर **'अनया पूजया श्रीविष्णुः प्रीयतां न मम'** कहकर भूमि पर छोड़ दे।

हे ईश्वर सब सुखी हों कोई ना हो दुखारी, सब हों निरोग भगवन धनधान्य के भण्डारी
सब भद्रभाव देखें, सन्मार्ग के पथिक हों, दुखिया न कोई होवे, सृष्टि में प्राण धारी

स्वागतं कृष्ण: शरणागतं कृष्ण:, स्वागतं सुस्वागतं शरणागतं कृष्णा।
हे केशव: हे माधव कृष्ण:, मधुसूदन: कृष्ण: मन मोहन कृष्णा।।

पुस्तक-व्यास-पूजन—पश्चात् पुस्तक का **'श्रीसरस्वत्यै नमः'**, ब्राह्मण का **'व्यासपुरुषाय नमः'** कहकर **गन्ध-पुष्प-नैवेद्य-ताम्बूल-दक्षिणा** प्रदान कर पूजन करे।

इति सत्यनारायण-पूजन-विधि समाप्त।

अनन्तर शंख-ध्वनि करके मंगलाचरण का पाठ कर कथा आरम्भ करें।

मंगलाचरणम्

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्।।१।।
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।२।।
अखण्ड-मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराऽचरम्। तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।३।।
अज्ञान-तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन-शलाकया। चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।४।।
अमोघं पुण्डरीकाक्षं नृसिंहं दैत्यसूदनम्। हृषीकेशं जगन्नाथं वागीशं वरदायकम्।।५।।
गुणत्रयं गुणातीतं गोविन्दं गरुडध्वजम्। जनार्दनं जनातीतं जानकीवल्लभं हरिम्।।६।।
प्रणमामि सदा भक्त्या नारायणमतः परम्। दुर्गमे विषमे घोरे शत्रुभिः परिपीडिते।।७।।
निस्तारयस्व सर्वेषु तथाऽनिष्टभयेषु च। नामान्येतानि सङ्कीर्त्य ईप्सितं फलमाप्नुयात्।।८।।
सत्यनारायणं देवं वन्देऽहं कामदं प्रभुम्। लीलया विततं विश्वं येन तस्मै नमो नमः।।९।।

स्वागतं कृष्ण, शरणागतं कृष्ण, स्वागतं सरणागतं । कृष्ण ।।

नीलाम्बुज-श्यामल-कोमलाङ्गं सीता-संमारोपित-वामभागम्।
पाणौ महासायक-चारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्।।१०।।

श्रीराघवं दशरथात्मजप्रमेयं सीतापतिं रघुकुलान्वय-रत्नदीपम्।
आजानु-बाहुमरविन्द-दलायताक्षं रामं निशाचर-विनाशकरं नमामि।।११।।

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती नारायणः सरसिजासन-सन्निविष्टः।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी हारी हिरण्मय-वपुर्धृत-शङ्खचक्रः।।१२।।

सशङ्खचक्रं सकिरीटकुण्डलं सपीतवस्त्रं सरसीरुहेक्षणम्।
सहारवक्षः स्थलकौस्तुभश्रियं नमामि विष्णुं शिरसा चतुर्भुजम्।।१३।।

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं, विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम्।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं, वन्दे विष्णुं भव-भयहरं सर्वलोकैकनाथम्।।१४।।

तत्रैव गङ्गा यमुना च तत्र गोदावरी सिन्धु सरस्वती च।
सर्वाणि तीर्थानि वसन्ति तत्र यत्राऽच्युतोदारकथाप्रसङ्गः।।१५।।

इति मङ्गलाचरणं समाप्तम्।

आओ वीर हनुमान देवता सारे,
म्हारे रिद्ध सिद्ध लेकर आओ गजानंद प्यारे।

वीर हनुमाना अति बलवाना, राम नाम रसियो रे।
प्रभु मन बसियो रे।।

बिनु सत्संग विवेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।।

मेरा तार हरी से जोड़े, ऐसा कोई संत मिले......

श्री राम, जय राम जय जय राम -3,
कौशल्या के प्यारे राम, दशरथ राज दुलारे राम,
बोलो श्री राम जै राम जै राम।

।। श्री गणेशाय नमः।।

श्रीसत्यनारायण-व्रत-कथा

(आचार्य पण्डित शिवदत्त मिश्र शास्त्रिकृत 'विष्णुप्रिया' भाषाटीका तथा प्रासंगिक श्लोक, दोहा, चौपाई एवं कवित्त सहित)

प्रथमोऽध्यायः (१)

व्यास उवाच

एकदा नैमिषारण्ये ऋषयः शौनकादयः। पप्रच्छुर्मुनयः सर्वे सूतं पौराणिकं खलु।।१।।

सर्वशास्त्रवेत्ता **श्रीवेदव्यासजी श्रोताओं से कहते हैं कि,** एक समय नैमिषारण्य नामक वन में शौनक आदि अट्ठासी हजार ऋषिगण एकत्रित होकर महान् कष्टकारी कलिकाल से त्रस्त होनेवाले मानव के कल्याणार्थ विचार-विनिमय कर रहे थे। इसी विचार-गोष्ठी के मध्य व्यासजी के शिष्य श्रीसूतजी महाराज का आगमन हुआ। उन्हें देखकर समस्त ऋषियों ने उठकर उनका अभिवादन किया। उक्त अवसर पर कथित कवि की उक्तियाँ देखिए—

दोहा—**आवत हिय हुलसै नहीं, मन में प्रीत न होय। श्री 'शिव' वाको गेह में, कबहुँ न जइहो कोय।।**

गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी लिखा है—

चौपाई— **अति आदर खगपति कर कीन्हा। स्वागत पूछि सुआसन दीन्हा।**
हरषि मिले उठे रमा-निकेता। बैठे आसन ऋषिहिं समेता।।

इसके अनन्तर अर्घ्य, पाद्य आदि देकर शौनक-आदि ऋषियों ने उनका यथोचित-सम्मान किया।।१।।

गुर बिन भव निधि तरह न कोई। जौं बिरंचि संकर सम होई।।

ऋषय ऊचुः

व्रतेन तपसा किं वा प्राप्यते वाञ्छितं फलम्। तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामः कथयस्व महामुने:!॥ २॥

तदनन्तर उनसे निवेदन किया कि, हे महाराज! हम सब लोग शोक-सागर में निमज्जित हो रहे थे। आपके आगमन से उद्धार का साधन सुलभ हो गया। आपका आगमन उसी प्रकार है, जिस प्रकार डूबते हुए को नौका का आश्रय।

इस प्रसंग में तुलसीदासजी ने लिखा है—

सोरठा— **राम बिरह सागर मँह, भरत मगन मन होत। बिप्र रूप धरि पवन-सुत, आइ गयो जिमि पोत॥**

हे प्रभु! कलिकाल निकट आनेवाला है, धर्म-उत्थान तथा रक्षण किस प्रकार होगा? इसी चिन्ता से हम सब लोग ग्रस्त हैं। इस कलियुग में कैसे-कैसे व्यक्ति होंगे, उसे सुनिये—

शास्त्र-कथा न सुनेंगे कभी, नहिं वेद-पुरान की बात गहेंगे।
जप-तप व्रत-नेम धरम-औ' करम, सब झूठ बता उपहास करेंगे॥
मानहिंगे नहिं मात-पिता, निज नारि के साथ अकेले रहेंगे।
फैशन में श्री 'शिव' रंगकर, नित साहब और मेम का वेष धरेंगे॥

तुलसीदासजी ने भी कलियुग के प्राणियों का उल्लेख किया है। जैसे-

चौपाई— **निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। कलियुग सोइ ग्यानी बैरागी॥**
नारि बिबस नर सकल गोसाईं। नाचहिं नर मरकट की नाईं॥

सब नर काम लोभ रत क्रोधी। देव बिप्र श्रुति सन्त बिरोधी॥
पर त्रिय लम्पट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लपटाने॥

ऋषियों ने कहा–हे महाराज! इस कष्ट के निवारणार्थ आप कृपा करके किसी ऐसे धार्मिक अनुष्ठान का विवेचन कीजिये, जिससे प्राणियों को अभीष्ट फल की उपलब्धि हो। ऐसी हम लोगों की हार्दिक अभिलाषा है।

चौपाई— **अति आरत पूछौं मुनिराया। रघुपति कथा कहहु करि दाया॥**
अब श्री राम-कथा अति पावनि। सदा सुखद दुख-पुंज नसावनि॥
सादर तात सुनावहु मोहीं। बार-बार बिनवउँ प्रभु तोहीं॥

शौनकादि ऋषियों की प्रार्थना सुनकर श्रीसूतजी महाराज कहने लगे कि, हे महर्षियो! आप लोग धन्य हैं, क्योंकि आप लोगों के अन्तस्थल (हृदय) में परोपकार की भावना प्रादुर्भूत हुई है। यथार्थ में आप-जैसे लोग ही शास्त्रों में 'साधु' शब्द से विभूषित किये गये हैं।

यथा—**साध्नोति परकार्याणि**–इति 'साधुः'।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी लिखा है—

चौपाई— **परहित बस जिनके मन माही। तिन मँह जग दुर्लभ कछु नाहीं॥**

और भी कहा गया है–**परोपकाराय सतां विभूतयः॥ २॥**

सूत उवाच

नारदेनैव संपृष्टो भगवान् कमलापतिः। सुरर्षये यथैवाऽऽह तच्छृणुध्वं समाहिताः॥३॥
एकदा नारदो योगी परा-ऽनुग्रह-काङ्क्षया। पर्यटन् विविधान्लोकान् मर्त्यलोकमुपागतः॥४॥
ततो दृष्ट्वा जनान् सर्वान् नानाक्लेशसमन्वितान्। नानायोनि-समुत्पन्नान्क्लिश्यमानास्वकर्मभिः॥५॥

सूतजी ने कहा– हे महर्षियो! जैसा प्रश्न आपलोगों ने मुझसे किया है, इसी प्रकार का प्रश्न एक बार देवर्षि नारदजी ने भगवान् विष्णु से भी किया था। और जिस प्रकार भगवान् ने उनके प्रश्नों का उत्तर सन्ध्योपासन के पश्चात् ही दिया था, उसी प्रकार मैं भी सन्ध्या-वन्दन के उपरान्त ही आप लोगों के प्रश्नों का उत्तर दूँगा। **ऋषियों ने कहा**–ठीक है महाराज, तब तक हमलोग भी सन्ध्यादि कर्म से निवृत्त हो लें। क्योंकि शास्त्रों में लिखा है—

तस्मात्र लङ्घयेत् सन्ध्यां सायं प्रातः समाहित। उल्लङ्घयति यो मोहात् स याति नरकं ध्रुवम्॥

अर्थात् जो आलस्यवश प्रातः तथा सायं सन्ध्या नहीं करता वह अवश्य ही नरकगामी होता है।

सन्ध्या-वन्दन से निवृत्त होने के उपरान्त समस्त ऋषिगण श्रीसूतजी के सम्मुख उपस्थित हुए। **सूतजी ने ऋषियों को सम्बोधित करते हुए कहा**–हे ऋषियो! आप लोग मेरी बात एकाग्रचित्त होकर सुनें; क्योंकि जब तक चित्त स्थिर नहीं रहता, तब तक किसी कार्य के करने से लाभ नहीं होता॥३॥ हे महर्षियो! एक बार देवर्षि नारदजी परोपकार की कामना से अनेक लोकों में घूमते-फिरते हुए मर्त्य-लोक में आये॥४॥ मृत्युलोक में आकर नारदजी ने देखा कि, सभी मनुष्य अनेक प्रकार के कष्टों से पीड़ित हैं और अनेक योनियों में जन्म लेकर अपने-अपने किये हुए पापों का परिणाम भुगत रहे हैं॥५॥

काहू न कोउ सुख दुख दाता। निज कृत करम भोग सब भ्राता॥ ५ वेद १८ पुराण
दीन दयाल बिरद संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी॥ मंगल भवन अमंगल हारी, द्रवहु सो दशरथ अजिर
संसार के लोगों से आशा न किया करना। जब कोई न हो उस वक्त सियाराम कहा करना

केनोपायेन चैतेषां दुःखनाशो भवेद् ध्रुवम्? । इति सञ्चिन्त्य मनसा विष्णुलोकं गतस्तदा॥६॥
तत्र नारायणं देवं शुक्लवर्णं चतुर्भुजम्। शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-वनमाला-विभूषितम्॥७॥
दृष्ट्वा तं देवदेवेशं स्तोतुं समुपचक्रमे।

एक बार करतल बीना। गावत हरि गुन गान प्रवीना॥
श्रीमन नारायण-१-१

नारद उवाच

नमो वाङ्-मनसातीत-रूपाया-ऽनन्तशक्तये॥८॥

प्राणियों को इस प्रकार कष्ट में देखकर नारदजी का मन दयार्द्र हो उठा और वह अपने मन में विचार करने लगे कि, इन प्राणियों का कष्ट किस तरह दूर किया जा सकता है। ऐसा सोचते-विचारते हुए नारदजी विष्णुलोक को गये।

चौपाई– **यह विचारि नारद कर बीना। गये जहाँ प्रभु सुख आसीना॥**
गावत रामचरित मृदु बानी। प्रेम सहित बहु भाँति बखानी॥ ६॥

विष्णुलोक में पहुँचकर नारदजी ने देखा कि, शुक्ल वर्णधारी भगवान् विष्णु चार भुजाओं से युक्त हैं और क्रम से उनके चारों भुजाओं में शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म विभूषित है और उनकी ग्रीवा में वनमाला सुशोभित हो रही है।

तुलसी-कुन्द-मन्दार-पारिजात-सरोरुहैः। पञ्चभिः सृजता माला वनमाला च कथ्यते॥ ७॥

ऐसे देवाधिदेव भगवान् श्रीविष्णु को देखकर **नारदजी स्तुति करते हैं**–हे भगवन्! आपको मेरा साष्टांग दण्डवत् है। साष्टांग दण्डवत् की विधि शास्त्रकारों ने इस प्रकार बतलायी है–

उरसा शिरसा दृष्ट्या मनसा वचसा तथा। पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यां प्रणामोऽष्टाङ्ग उच्यते॥

आप सर्वभूतों (प्राणियों) के ज्ञाता हैं। आपके असंख्य रूप हैं तथा आपकी शक्ति अतुलनीय और असीम है॥८॥

शिव जी को जल, सूर्य को अर्घ्य, विष्णु भगवान को श्रृंगार करके सजाना भोग लगाना
राम के कार्य हनुमान जी ने किये – भोले नाथ को विष्णु जी ने भस्मासुर से बचाया, इसलिये भोलेनाथ हनुमान बनकर राम के साथ कार्य किये

आदि-मध्या-न्तहीनाय निर्गुणाय गुणात्मने। सर्वेषामादिभूताय भक्तानामार्तिनाशिने॥ ९॥
श्रुत्वा स्तोत्रं ततो विष्णुर्नारदं प्रत्यभाषत।

श्रीभगवानुवाच

किमर्थमागतोऽसि त्वं किं ते मनसि वर्तते?। कथयस्व महाभाग! तत्सर्वं कथयामि ते॥ १०॥

हे भगवन्! आपका न आदि है, न मध्य है और न अन्त ही है, आप निर्गुण और त्रिगुण (सत्, रज, तम) की आत्मा हैं और समस्त प्राणियों के आदि कारण हैं तथा अपने भक्तों के कष्ट को दूर करने वाले हैं।

छन्द— **जय असुर निकन्दन मुनि-मन-रंजन, नहिं तव आदि न अन्ता।**
जो ध्यान लगावहिं भव तर जावहिं, कहहिं सकल सुर सन्ता॥
यह भगति तुम्हारी सब सुखकारी, पावहिं परमानन्दा। 'शिव' चरणन में शीश झुकाऊँ, त्राहि त्राहि भगवन्ता॥

तुलसीदासजी ने भी लिखा है–

चौपाई— **व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता। अखिल अमोघ शक्ति भगवन्ता॥**
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। समदरसी अनवद्य अजीता॥
निर्मम निराकार निरमोहा। नित्य निरंजन सुख सन्दोहा॥
प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी। ब्रह्म निरीह बिरज अविनासी॥९॥

नारदजी के मुख से ऐसी स्तुति सुनकर **भगवान् ने उनसे पूछा**–हे मुनिवर! आप किस उद्देश्य से आये हैं, आप मुझसे क्या माँगना चाहते हैं? हे महाभाग! आपके मन में क्या बात है, आप मुझसे बतलाइए। मैं उसका उत्तर दूँगा॥१०॥

कोई तन दुःखी कोई मन दुःखी कोई धन बिन रहत उदास, थोड़ा -) सब दुखी, सबसे सुखी राम के दास

नारद उवाच

मर्त्यलोके जनाः सर्वे नानाक्लेशसमन्विताः। नानायोनि-समुत्पन्नाः पच्यन्ते पापकर्मभिः॥११॥
तत्कथं शमयेन्नाथ! लघूपायेन तद् वद। श्रोतुमिच्छामि तत्सर्वं कृपास्ति यदि ते मयि॥१२॥

श्रीभगवानुवाच

साधु पृष्टं त्वया वत्स! लोकानुग्रह-कांक्षया। यत्कृत्वा मुच्यते मोहात्तच्छृणुष्व वदामि ते॥१३॥

नारदजी ने कहा– हे भगवन्! मैं मर्त्यलोक में गया था और वहीं से आ रहा हूँ। वहाँ पर मैंने सम्पूर्ण प्राणियों को अनेक क्लेशों से क्लेशित पाया। वे सभी मनुष्य नाना प्रकार की योनियों में उत्पन्न होकर अपने-अपने कर्मों का फल भोग रहे हैं।

चौपाई—**करि बिनती दुख दुसह सुनाये–**

दोहा—**कलिमल ग्रसे धर्म सब, लुप्त भये सद्ग्रन्थ। दम्भिन निज मति कल्पि कर, प्रकट किये बहुपन्थ॥११॥**

इसलिए, हे भक्तवत्सल भगवन्! उन जीवों के उद्धार के निमित्त कोई ऐसा छोटा और सरल उपाय बतलाइए, जिससे उनका कष्ट दूर हो जाय। यदि आपका मेरे पर अनुग्रह है तो कहिए। मंगल भवन अमंगल हारी, द्रवहुस दशरथ अजिर बिहारी

चौपाई— **दीन दयाल बिरद सम्भारी। हरहु नाथ मम संकट भारी॥१२॥**

भगवान् ने नारदजी से कहा– हे नारद! आपने अच्छा प्रश्न किया है। इससे संसार के सभी प्राणियों का कल्याण होगा और मनुष्य समस्त पापों से छूटकर मोक्ष-धाम को प्राप्त होंगे। हे नारदजी, इस नश्वर शरीर को परोपकार के कर्मों में ही लगाना चाहिए। तुलसीदासजी ने भी लिखा है—

भाव बिना कोई पुकारे, मैं कभी सुनता नहीं भाव से एक फूल दे वो मुझे स्वीकार है।
भाव का भूखा हूँ बस भाव ही एक सार है। भाव से जो भजे मुझको हो जाये भव से पार है।

व्रतमस्ति महत्पुण्यं स्वर्गे मर्त्ये च दुर्लभम्। तव स्नेहान्मया विप्र प्रकाशः क्रियतेऽधुना॥१४॥
सत्यनारायणस्यैव व्रतं सम्यग् विधानतः। कृत्वा सद्यः सुखं भुक्त्वा परत्र मोक्षमाप्नुयात्॥१५॥
तच्छ्रुत्वा भगवद् वाक्यं नारदो मुनिरब्रवीत्।

चौपाई— **पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥**
गिरिजा रघुपति कै यह रीती। सन्तत करहिं प्रणत पर प्रीती॥
सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं विषय अनुरागी॥
देह धरे कर यह फल भाई। भजिय राम सब काम बिहाई॥

इसलिए, हे मुनीश्वर! आपको मैं एक छोटी-सी युक्ति बतलाता हूँ, उसे सावधान होकर सुनें॥१३॥

एक ऐसा व्रत बतलाता हूँ, जो त्रैलोक्य में दुर्लभ है और अत्यन्त फलदायक है। हे नारदजी, इस व्रत को मैं आपके स्नेह के कारण प्रकट कर रहा हूँ। इस उत्तम व्रत के प्रभाव से कलियुग के प्राणियों का मंगल होगा।

चौपाई— **कलि केवल एक हरिगुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा॥१४॥**

हे नारदजी, जो लोग इस कलिकाल में श्रीसत्यदेव भगवान् का विधिपूर्वक व्रत और पूजन करेंगे, वह इस लोक में शीघ्र ही सुख के भागी होंगे और अन्त में परधाम को प्राप्त होंगे। क्योंकि अपने किये हुए शुभ-अशुभ कर्मों का फल मनुष्य को शीघ्र ही मिलता है। शास्त्रों में कहा है—

त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिभिर्पक्षैस्त्रिभिर्दिनैः। अत्युत्कटैः पाप-पुण्यैरिहैव फलमश्नुते॥१५॥

१ बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रन्थिन्ह गावा। ...

जय राधे राधे गोविन्द, गोविन्द राधे, गोविन्द राधे गोपाल राधे॥

नारद उवाच

किं फलं? किं विधानं च? कृतं केनैव तद्व्रतम्॥१६॥
तत्सर्वं विस्तराद् ब्रूहि कदा कार्यं व्रतं प्रभो।

श्रीभगवानुवाच

दुःख-शोकादि-शमनं धन-धान्य-प्रवर्धनम्॥१७॥
सौभाग्य-सन्ततिकरं सर्वत्र विजयप्रदम्।
यस्मिन् कस्मिन् दिने मर्त्यो भक्ति-श्रद्धा-समन्वितः॥१८॥
सत्यनारायणं देवं यजेच्चैव निशामुखे। तोरणादि च कर्त्तव्यं कदली-स्तम्भमण्डितम्॥१९॥

भगवान् के मुख से ऐसी बात सुनकर नारदजी ने पूछा—हे भगवन्! इस व्रत का क्या फल है? किस विधि से करना चाहिए? किस समय में करना चाहिए तथा इस व्रत को पूर्वकाल में किसने किया था? कृपया इन सब बातों की आप मुझसे विस्तृत विवेचना कीजिए॥१६॥

नारदजी का ऐसा प्रश्न सुनकर **भगवान् ने कहा**— हे नारदजी! यह व्रत समस्त सन्तापों का नाशक और धन-धान्य प्रवर्धक है॥१७॥ इसके अतिरिक्त इस व्रत के प्रभाव से सौभाग्य की वृद्धि, सन्तान की प्राप्ति और सर्वत्र विजय लाभ होता है। इस व्रत को करने का दिन या समय निश्चित नहीं है, किसी भी दिन इस व्रत को भक्तिभाव से युक्त होकर श्रद्धापूर्वक किया जा सकता है॥१८॥ **भगवान् ने कहा**—हे नारदजी, सन्ध्या के समय ब्राह्मण और अपने बन्धु-बान्धवों के साथ धर्म में प्रवृत्त

पञ्चभिः कलशैर्युक्तं ध्वजाद्यैश्च समन्वितम्। जलपूर्णं स-रत्ने च पूगीफल-समन्विते॥२०॥
भूषिते पुष्प-मालाभिः सप्तधान्योपरिस्थिते। छादयेत् पट्टवस्त्रै-र्नानावस्त्र-विचित्रितैः॥२१॥
चन्दनादि-सुगन्धेन लेपयेद् गृहमण्डपम्। शङ्ख-भेरी-मृदङ्गं च वादयेद् बहुभिर्जनैः॥२२॥
नानामङ्गलचारैस्तु कर्त्तव्यं निज-सज्जनैः। सन्ध्यायां नियमं कृत्वा दन्तधावनपूर्वकम्॥२३॥

होकर श्रीसत्यदेव का पूजन करना चाहिए। हे नारदजी, अब मैं आपको पूजन की विधि बतलाता हूँ, ध्यान से सुनिये। सर्वप्रथम केले के पत्तों से आच्छादित एक मण्डप बनावे और इसके आसपास अशोक, आम आदि के पत्तों से तोरण (बन्दनवार) लगावे।

चौपाई– **बन्दनवार पताका केतू। सबनि बनाये मंगल हेतू॥१९॥**

इसके उपरान्त पाँच कलशों को जल से पूरित (भर) करके उनमें पाँच पल्लव (बड़, पीपल, आम, पाकड़, गूलर), पंचरत्न (मोती, मूँगा, सोना, चाँदी और ताँबा), सर्वौषधि, दूर्वा और सुपारी आदि छोड़े॥२०॥ इसके अतिरिक्त पुष्पादि से सुशोभित कर, उस घट को सप्तधान्य (तिल, यव, उड़द, चावल, गेहूँ, चना और मूँग) के ऊपर स्थापित करे और उस मण्डप को रंग-बिरंगे वस्त्रों से आच्छादित करके चँदोवा बनावे॥२१॥ फिर उस मण्डप में चन्दनादि गन्धों से लेपन करे। इसके बाद शंख, मृदंग आदि विविध वाद्यों से उत्सव मनावे॥२२॥ इस अवसर पर सज्जनों को नाना प्रकार के मांगलिक आचार करने चाहिए। सायंकाल के नियम का पालन करना चाहिए अर्थात् एक दिन पूर्व, सन्ध्या समय दन्तधावन, स्नान आदि करके एक बार आहार ग्रहण करे तथा रात्रि में भूमि पर शयन करे॥२३॥

प्रातरुत्थाय मेधावी स्नात्वाऽऽश्यकमाचरेत्। तदनुप्रतिमामेकां सुवर्णस्य शुभाकृतिम्॥२४॥
कारयेद् वित्तमानेन स्थापयेच्च यथाविधि। पञ्चामृतैस्ततो वस्त्रयुग्मेन परिवेष्टिताम्॥२५॥
ताम्रपात्रेषु विन्यस्य स्थापयेत् प्रतिमां शुभाम्। प्रतिष्ठां च प्रकुर्वीत स्वस्ति-वाचन-पूर्वकम्॥२६॥
चन्दनेन सुगन्धेन पुष्पैः कालोद्भवैः फलैः। धूपैर्दीपैश्च नवेद्यैस्ताम्बूलैः स-फलैः शुभैः॥२७॥
ब्राह्मणैर्बान्धवैश्चैव सहितो धर्मतत्परः। नैवेद्यं भक्तितो दद्यात् सपादं भक्ष्यमुत्तमम्॥२८॥

प्रात:काल उठकर स्नानादि कर्मों से निवृत्त होकर दिन भर निराहार रहे और सायंकाल में स्नान के बाद आसन पर बैठकर गणेश-गौरी और नवग्रह का पूजन करे। तदनन्तर अपने सामर्थ्य के अनुसार भगवान् विष्णु की स्वर्णमयी प्रतिमा बनवावे॥२४॥ अथवा शालिग्राम की ही मूर्ति रखकर उस प्रतिमा को मध्य कलश या सिंहासन पर स्थापित करे। पंचामृत (१. गाय का दूध, २. दही, ३. घी, ४. मधु, ५. शक्कर) से स्नान कराकर दो वस्त्रों से आवेष्टित करे॥२५॥ फिर वस्त्रों से परिवेष्टित उस प्रतिमा को ताँबे के पात्र में स्थापित करे और स्वस्तिवाचन पूर्वक उस प्रतिमा की प्रतिष्ठा करे और शालिग्राम की मूर्ति को कलश पर स्थापित करे॥२६॥

तत्पश्चात् चन्दन, गन्ध, द्रव्य, पुष्प, ऋतुफल अर्थात् उस मौसम में जो फल मिल सके, ले लें और धूप, दीप, नैवेद्य तथा ताम्बूल आदि समर्पित कर भगवान् का पूजन करे॥२७॥ ब्राह्मण, बन्धु-बान्धव आदि को आमन्त्रित करके धर्म में आस्था रखकर पूजन करे। भक्तिपूर्वक सवा मन, सवा पाँच सेर या सवा सेर नैवेद्य अर्पित करे॥२८॥

रम्भाफलं घृतं क्षीरं गोधूमस्य च चूर्णकम्। अभावे शालिचूर्णं वा शर्करा च गुडं तथा॥२९॥
सपादं सर्वभक्ष्याणि चैकीकृत्य निवेदयेत्। विप्राय दक्षिणां दद्यात् कथां श्रुत्वा जनैः सह॥३०॥
ततश्च बन्धुभिः सार्धं विप्रांश्च प्रति भोजयेत्। प्रसादं भक्षयेद् भक्त्या नृत्य-गीतादिकं चरेत्॥३१॥
ततश्च स्वगृहं गच्छेत् सत्यनारायणं स्मरन्। एवं कृते मनुष्याणां वाञ्छा-सिद्धिर्भवेद् ध्रुवम्॥३२॥
विशेषतः कलियुगे लघूपायोऽस्ति भूतले।

इति श्रीस्कन्दपुराणे चतुर्विंशतिसहस्रसंहितात्मके अन्यदेवरेवाखण्डे सत्यनारायणव्रतकथायां प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

नैवेद्य में पका केला, गोघृत, गोदुग्ध और शक्कर मिश्रित गेहूँ का आटा, यदि गेहूँ का आटा और शक्कर न मिले तो चावल का आटा और गुड़ लेकर चूर्ण बनावे॥२९॥ सब वस्तुओं को सवाया मात्रा में एकत्रित कर भगवान् को अर्पण करे। तत्पश्चात् कथावाचक ब्राह्मण को दक्षिणा प्रदान करके अपने कुटुम्बियों के साथ कथा श्रवण करे॥३०॥ इसके बाद बन्धु-बान्धवों सहित ब्राह्मण को भोजन करावे। प्रसाद ग्रहण करने के बाद गाना-बजाना आदि करे॥३१॥ घर जाते समय मन में भगवान् सत्यनारायण का स्मरण करते हुए जाय। इस प्रकार करने से मनुष्य को अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है॥३२॥ विशेष करके कलिकाल में इससे बढ़कर कल्याणकारी और सरल उपाय इस पृथ्वी पर दूसरा नहीं है।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत रेवाखण्ड-स्थित सत्यनारायण व्रत-कथा में आचार्य पण्डित शिवदत्तमिश्रशास्त्रिकृत 'विष्णुप्रिया' हिन्दी-टीका सहित प्रथम अध्याय समाप्त॥१॥

गोविन्द हरे गोपाल हरे, जय-जय प्रभु दीन दयाल हरे।
जय राम हरे जय कृष्ण हरे, जय जय
मुरलीधर घनश्याम हरे॥

सदा भगवान के नाम में आनन्द रहता उसे सदानन्द कहते हैं।

द्वितीयोऽध्यायः (२)

सूत उवाच

अथाऽन्यत् संप्रवक्ष्यामि कृतं येन पुरा द्विज। कश्चित् काशीपुरे रम्ये ह्यासीद् विप्रोऽतिनिर्धनः॥१॥
क्षुत्तृड्भ्यां व्याकुलो भूत्वा नित्यं बभ्राम भूतले। दुःखितं ब्राह्मणं दृष्ट्वा भगवान् ब्राह्मणप्रियः॥२॥
वृद्धब्राह्मणरूपस्तं पप्रच्छ द्विजमादरात्। किमर्थं भ्रमसे विप्र! महीं नित्यं सुदुःखितः॥३॥

श्रीसूतजी ऋषियों से तथा भगवान् नारदजी से व्रत का विधान और माहात्म्य वर्णन करने के बाद श्रीसत्यनारायण व्रत के व्रती (अर्थात् व्रत करनेवाले) के सम्बन्ध में **कहते हैं**–काशीपुरी नामक रमणीक नगर में शतानन्द नाम के एक अत्यन्त धनहीन ब्राह्मण रहते थे॥१॥ वे इतने दरिद्र थे कि क्षुधा से पीड़ित होकर प्रतिदिन भिक्षाटन के निमित्त दूर-दूर तक भ्रमण किया करते थे। कहा भी गया है— **जटिलो मुण्डो लुञ्चित-केशः काषायाम्बर-बहुकृतवेषः।**
पश्यन्नपि न च पश्यति मूढः उदरनिमित्तं बहुकृतवेषः॥

ऐसी स्थिति में ब्राह्मण को देखकर भगवान् का मन द्रवित हो गया, क्योंकि ब्राह्मण लोग भगवान् के प्रिय पात्र हैं—

चौपाई— **कहि प्रिय वचन सकल समुझाये। विप्र-वृन्द रघुबीर बोलाये।**
गुरु सन कहि बरषासन दीन्हें। आदर दान विनय बस कीन्हें॥२॥

भगवान् वृद्ध ब्राह्मण के वेश में उस क्षुधातुर ब्राह्मण के निकट जाकर बोले–हे ब्राह्मण! आप किस दुख से दुखी होकर इस पृथ्वी पर भटक रहे हैं?॥३॥

तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि कथ्यतां द्विजसत्तम!।

ब्राह्मण उवाच

ब्राह्मणोऽतिदरिद्रोऽहं भिक्षार्थं वै भ्रमे महीम्॥४॥
उपायं यदि जानासि कृपया कथय प्रभो!।

वृद्धब्राह्मण उवाच

सत्यनारायणो विष्णुर्वाञ्छितार्थफलप्रदः॥५॥

हे विप्रवर! आप पूरा वृत्तान्त मुझसे कहिए। मैं आपका कष्ट जानना चाहता हूँ।

ब्राह्मण वेशधारी भगवान् की बात सुनकर **वह ब्राह्मण बोला**—हे भगवन्! मैं बहुत ही निर्धन ब्राह्मण हूँ और भिक्षा के लिए प्रतिदिन इधर-उधर घूमता-फिरता हूँ, क्योंकि—

नाऽस्ति क्षुधासमं दुःखं नाऽस्ति रोगः क्षुधासमः। नास्त्यादरसमं सौख्यं नाऽस्ति क्रोधसमो रिपुः॥

चौपाई— **नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं। सन्त मिलन सम सुख कछु नाहीं॥४॥**

इसलिए, हे प्रभो! यदि आप इस कष्ट से मुक्त होने का कोई उपाय जानते हों, तो कृपा करके मुझसे कहिए।

ब्राह्मण के प्रश्न को सुनकर **वृद्ध ब्राह्मण वेशधारी भगवान् बोले**—हे विप्र! आप श्रीसत्यदेव भगवान् का पूजन और व्रत कीजिए। वह अभिलषित फल को देने वाले हैं। क्योंकि कहा है—

चौपाई— **जन कहँ कछु अदेय नहिं मोरे। अस विश्वास तजहु जनि मोरे॥५॥**

जय राधा माधव जय हो कुंज विहारी, 2, यशोदा नंदन ब्रज जन रंजन —3 जमुना तीर वन चारी- जै राधा मा...

जन्म मरण के घोर चक्र का, तब तक कभी न होगा अन्त। जब तक मानव नहीं भजेगा श्रद्धा युत मन से भगवन्त।।

तस्य त्वं पूजनं विप्र! कुरुष्व व्रतमुत्तमम्। यत्कृत्वा सर्वदुःखेभ्यो मुक्तो भवति मानवः॥६॥
विधानं च व्रतस्याऽपि विप्रायाऽऽभाष्ययत्नतः। सत्यनारायणो वृद्धस्तत्रैवान्तरधीयत॥७॥
तद्-व्रतं सङ्करिष्यामि यदुक्तं ब्राह्मणेन वै। इति सञ्चिन्त्य विप्रोऽसौ रात्रौ निद्रां न लब्धवान्॥८॥
ततः प्रातः समुत्थाय सत्यनारायणव्रतम्। 'करिष्ये' इति सङ्कल्प्य भिक्षार्थमगमद् द्विजः॥९॥
तस्मिन्नेव दिने विप्रः प्रचुरं द्रव्यमाप्तवान्। तेनैव बन्धुभिः सार्धं सत्यस्य व्रतमाचरत्॥१०॥

अतः हे ब्राह्मण, आप मेरे कहने से इस व्रत को करें। जो भी प्राणी इस उत्तम व्रत को करता है, वह निःसन्देह क्लेशों से रहित होकर परम धाम को जाता है॥६॥ ब्राह्मण वेशधारी भगवान् विष्णु उस ब्राह्मण को व्रत और पूजन की विधि बतला कर उस स्थान से अदृश्य हो गये॥७॥ भगवान् के अन्तर्ध्यान हो जाने पर ब्राह्मण अपने मन में सोचने लगा कि इस व्रत का विधान तो बहुत बड़ा है, उसे विधिवत् करना मेरे वश की बात नहीं है। क्योंकि भिक्षावृत्ति से तो मेरे परिवार का भरण-पोषण ही सम्भव नहीं हो पाता, तो मैं इस व्रत को कैसे सम्पन्न कर सकूँगा। इसी ऊहा-पोह में ब्राह्मण को रात्रि में नींद नहीं आयी। जैसे कि—

चौपाई— **एकउ युक्ति न मन ठहरानी। सोचत भरतहिं रैन सिरानी॥८॥**

प्रातःकाल नित्य कर्म से निवृत्त होकर, उस ब्राह्मण ने अपने मन में ऐसा दृढ़ संकल्प किया कि, आज की भिक्षा से मुझे जो कुछ भी प्राप्ति होगी, उसी से मैं श्रीसत्यनारायण भगवान् का व्रत और पूजन करूँगा॥९॥

मन मैं ऐसा संकल्प करके वह ब्राह्मण भिक्षा के उद्देश्य से बाहर आया। भगवत्कृपा से उस दिन ब्राह्मण को भिक्षा में

सर्व-दु:ख-विनिर्मुक्त: सर्वसम्पत्समन्वित:। बभूव स द्विजश्रेष्ठो व्रतस्याऽस्य प्रभावत: ॥११॥
तत: प्रभृतिकालं च मासि मासि कृतं व्रतम्। एवं नारायणस्येदं व्रतं कृत्वा द्विजोत्तम: ॥१२॥
सर्वपाप-विनिर्मुक्तो दुर्लभं मोक्षमाप्तवान्। व्रतमस्य यदा विप्रा: पृथिव्यां सञ्चरिष्यति ॥१३॥
तदैव सर्वदु:खं च मनुजस्यविनश्यति। एवं नारायणेनोक्तं नारदाय महात्मने ॥१४॥

प्रचुर (बहुत) धन मिला। क्योंकि कहा भी है—

चौपाई— **तुम कृपाल जापर अनुकूला। ताहि न व्याप त्रिविध भव सूला॥**
जापर कृपा राम की होई। तापर कृपा करे सब कोई॥
सोइ गुनज्ञ सोई बड़भागी। जो रघुबीर चरन अनुरागी॥

इसलिए घर लौटकर ब्राह्मण ने अपने स्वजनों को आमन्त्रित किया और श्रद्धापूर्वक श्रीसत्यनारायणदेव का व्रत और पूजन किया॥१०॥ उस पूजन और व्रत के प्रभाव से वह दरिद्र ब्राह्मण सब प्रकार के दु:खों से छूट गया और धन-धान्य से समृद्ध हो गया॥११॥ तभी से वह ब्राह्मण प्रतिमास नियमित रूप से उस व्रत को करने लगा। इस प्रकार श्री सत्यदेव के उत्तम व्रत को करते रहने से वह ब्राह्मण समस्त पापों से मुक्त होकर अन्त में मोक्ष धाम को प्राप्त हो गया॥१२॥

इसी प्रकार उस ब्राह्मण के अनुसार जो व्यक्ति श्रीसत्यनारायण भगवान् का व्रत और पूजन करेंगे, वे निश्चय ही सभी कष्टों से मुक्त होकर परमधाम के अधिकारी होंगे। इस प्रकार भगवान् के व्रत का महत्त्व नारदजी से बतलाया। इसके बाद **श्रीसूतजी ने शौनकादि ऋषियों को सम्बोधित करते हुए पूछा**–हे मुनियो! मैंने व्रत के माहात्म्य का वर्णन कर दिया। अब आगे आप लोग क्या सुनना चाहते हैं?॥१४॥

स्वामी मन में बसे हो बसे रहना।
हाड़ मांस का है ये मन्दिर। आप बसे हो इसके अन्दर॥ इसमें है बोले वे प्यारी मैना? स्वामी मन में...
दासी तुम्हारा तुम्हे पुकारे। हर पल नैयना बाट निहारे॥ दुःख सुख में यही रहना? स्वामी मन में...
जब तक घट में प्राण रहेगा। जिह्वा पर तेरा नाम रहेगा॥ हरि भक्तों का यही कहना। स्वामी मन...

मया तत्कथितं विप्रा: किमन्यत् कथयामि ते।

ऋषय ऊचु:

तस्माद् विप्राच्छ्रुतं केन पृथिव्यां चरितं मुने। तत्सर्वं श्रोतुमिच्छाम: श्रद्धाऽस्माकं प्रजायते ॥१५॥

सूत उवाच

श्रृणुध्वं मुनय: सर्वे व्रतं येन कृतं भुवि। एकदा स द्विजवरो यथाविभव-विस्तरै: ॥१६॥
बन्धुभि: स्वजनै: सार्धं व्रतं कर्तुं समुद्यत:। एतस्मिन्नन्तरे काले काष्ठक्रेता समागमत् ॥१७॥

ऋषियों ने श्रीसूतजी से पूछा–महाराज, उस ब्राह्मण से इस व्रत को पुन: श्रवण करने के बाद किसने किया? इस वृत्तान्त को हमलोग आपके मुख से श्रवण करना चाहते हैं। आप बतलाने की कृपा करें। कभा भी है—**सुना चहौं रघुपति गुन गूढ़ा॥१५॥**

श्रीसूतजी ने कहा– हे ऋषियो! ब्राह्मण के द्वारा सुनकर जिसने इस व्रत को पृथ्वी पर किया, उसे सुनिए। एक दिन वही श्रेष्ठ ब्राह्मण धन और ऐश्वर्य के अनुसार॥१६॥ बान्धुवों सहित श्रीसत्यदेव भगवान् का व्रत और पूजन करने को पुन: उद्यत हुआ। इतने में वहाँ एक काष्ठविक्रेता (लकड़हारा) अपनी लकड़ियों के भार को घर के बाहरी द्वार पर रखकर ब्राह्मण के घर में प्रविष्ट हुआ।

चौपाई— **कथा आरम्भ करै सोइ चाहा। तेहि समय गयउ खगनाहा॥**

वह लकड़हारा भूख और प्यास से पीड़ित हो रहा था॥१७॥

बर्हिः काष्ठं च संस्थाप्य विप्रस्य गृहमाययौ। तृष्णया पीडितात्मा च दृष्ट्वा विप्रं कृतं व्रतम्॥१८॥
प्रणिपत्य द्विजं प्राह किमिदं क्रियते त्वया। कृते किं फलमाप्नोति विस्तराद् वद मे प्रभो!॥१९॥

विप्र उवाच

सत्यनारायणस्येदं व्रतं सर्वेप्सितप्रदम्। तस्य प्रसादान्मे सर्वं धन-धान्यादिकं महत्॥२०॥

उसने गृह में प्रवेश करते ही पूर्व परिचित उस भिक्षुक ब्राह्मण को देखा। ब्राह्मण को ऐसे ऐश्वर्य की स्थिति में देखकर वह लकड़हारा आश्चर्यान्वित हो उठा तथा भगवान् की इस विलक्षण महिमा को देखकर लकड़हारा पुलकित हो गया। कहा भी है–

चौपाई— **भगत बछलता प्रभु कै देखी। उपजी मम उर प्रीति बिशेषी।।**
सजल नयन पुलकित कर जोरी। कीन्हेहु बहुविधि विनय बहोरी।।१८।।

कुछ ही क्षणों के अनन्तर **उस काष्ठविक्रेता ने ब्राह्मण से पूछा**–हे महाराज, आप इतने भक्तिपूर्वक तल्लीन होकर किसका पूजन कर रहे हैं? इस पूजन का फल क्या है, यह जानने के लिए मेरी जिज्ञासा है? आप कृपा करके मुझसे विस्तारपूर्वक कहिये?।।१९।।

ब्राह्मण ने लकड़हारे के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा–मैं सत्यनारायण भगवान् का व्रत तथा उनका पूजन कर रहा हूँ। श्रीसत्यदेव भगवान् मनुष्य की सभी आकांक्षाएँ पूर्ण करते हैं। आज तुम मेरा यह जो वैभव देख रहे हो, यह सब श्रीसत्यनारायणजी की कृपा का ही फल है। कहा भी है–

चौपाई— **प्रभु की कृपा भयउ सब काजू। जनम हमार सफल भा आजू।।२०।।**

तस्मादेतद् व्रतं ज्ञात्वा काष्ठक्रेताऽतिहर्षितः। पपौ जलं प्रसादं च भुक्त्वा स नगरं ययौ॥२१॥
सत्यनारायणं देवं मनसा इत्यचिन्तयत्। काष्ठं विक्रयतो ग्रामे प्राप्यते चाऽद्य यद्धनम्॥२२॥
तेनैव सत्यदेवस्य करिष्ये व्रतमुत्तमम्। इति सञ्चिन्त्य मनसा काष्ठं कृत्वा तु मस्तवे॥२३॥
जगाम नगरे रम्ये धनिनां यत्र संस्थितिः। तद्दिने काष्ठमूल्यं च द्विगुणं प्राप्तवानसौ॥२४॥
ततः प्रसन्नहृदयं सुपक्वं कदलीफलम्। शर्करा-घृत-दुग्धं च गोधूमस्य च चूर्णकम्॥ २५॥
कृत्वैकत्र सपादं च गृहीत्वा स्वगृहं ययौ। ततो बन्धून् समाहूय चकार विधिना व्रतम्॥२६॥

ब्राह्मण के मुख से भगवान् की ऐसी महिमा सुनकर वह लकड़हारा अत्यन्त प्रफुल्लित हुआ तथा भगवान् का प्रसाद ग्रहण करके और जल पीकर अपने नगर को चला गया।।२१।। लौटते समय लकड़हारे ने अपने मन में ऐसी धारणा की कि, आज लकड़ी बेचने से मुझे जितना भी द्रव्य मिलेगा।।२२।। मैं उसी से श्रीसत्यनारायण का व्रत और पूजन करूँगा। मन मैं ऐसा विचार कर लकड़ी का बोझ सिर पर रख, बिक्री के लिए चल पड़ा।।२३।।

भगवत्कृपा से उस दिन वह लकड़हारा अपने सिर पर लकड़ियों का बोझ लिये हुए ऐसे स्थान पर जा पहुँचा, जहाँ धनिक वर्गों का निवास था और उस दिन उसे लकड़ी के व्यापार में दुगुना लाभ हुआ।।२४।। इसके बाद काष्ठ-विक्रेता ने प्रसन्न मन से भगवान् के पूजन के लिए केले का पका हुआ फल, शक्कर, घी, दूध और गेहूँ का आटा खरीदा।।२५।। इसके पश्चात् घर पहुँचने पर उसने अपने बन्धु-बान्धवों को आमन्त्रित किया तथा ब्राह्मण को बुलाकर विधिवत् श्रीसत्यनारायण का व्रत तथा पूजन किया।।२६।। राधे बरसाने वारी तेरो पुजारी है बनवारी।

राधे-राधे - । ... । — ।
श्रीमन नारायण - । नारायण - श्रीमन नारायण - । नारायण श्री

तद्व्रतस्य प्रभावेण धनपुत्रान्वितोऽभवत्। इह लोके सुखं भुक्त्वा चाऽन्ते सत्यपुरं ययौ॥२७॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे चतुर्विंशतिसहस्रसंहितात्मके अन्यदेवरेवाखण्डे सत्यनारायणव्रतकथायां द्वितीयोऽध्यायः॥२॥

उस व्रत और पूजन के प्रभाव से लकड़हारे को धन-धान्य तथा पुत्र की प्राप्ति हुई और संसार में जीवन-पर्यन्त सुख का उपभोग करके अन्त में वह परम पद को प्राप्त हुआ। इसको तुलसीदासजी अपने मार्मिक शब्दों में इस प्रकार लिखा है—

चौपाई— **जीवन सकल जनम फल पाये। अन्त अमरपति सदन सिधाये॥२७॥**

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत रेवाखण्डस्थित सत्यनारायण व्रत-कथा में आचार्य पण्डित शिवदत्तमिश्र शास्त्रि-कृत 'विष्णुप्रिया' हिन्दीटीका सहित द्वितीय अध्याय समाप्त॥२॥

मुझे मेरे मालिक बहुत कृपा किया है—1
तेरा शुक्रिया है—3
ये जायदाद दी है, ये औलाद दी है।
मुसीबत में हर वक्त मदद की है।
तेरा ही दिया मैंने खाया पिया है,
तेरा शुक्रिया है—2

मैं हूँ शरण में तेरी, संसार के रचैया,
कश्ती मेरी लगा दो, उस पार ओ कन्हैया। ... मैं
मेरी अरदास सुन लीजै, प्रभु सुध आन करो
दरस एक बार तो दीजै, मैं समझूंगा श्याम रीझे
पतवार थाम लो तुम, मझधार में है नैया
मैं हूँ शरण में तेरी...

श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव।

तृतीयोऽध्यायः (३)

सूत उवाच

पुनरग्रे प्रवक्ष्यामि श‍ृणुध्वं मुनिसत्तमाः। पुरा चोल्कामुखो नाम नृपश्चासीन् महामतिः॥१॥
जितेन्द्रियः सत्यवादी ययौ देवालयं प्रति। दिने दिने धनं दत्त्वा द्विजान् सन्तोषयत्सुधीः॥२॥
भार्या तस्य प्रमुग्धा च सरोजवदना सती। भद्रशीलानदीतीरे सत्यस्य व्रतमाचरेत्॥३॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र साधुरेकः समागतः। वाणीज्यार्थं बहुधनैरनेकैः परिवारितः॥४॥

श्रीसूतजी महाराज ने शौनकादि ऋषियों से कहा— हे मुनियो, ब्राह्मण और लकड़हारे की कथा का वर्णन मैं कर चुका। अब मैं आगे जिस-जिस ने इस व्रत को किया है, उसे कहता हूँ, आप लोग दत्तचित्त होकर सुनें। प्राचीनकाल में उल्कामुख नाम का एक राजा राज्य करता था॥१॥ वह राजा जितेन्द्रिय, सत्यभाषी और देवोपासक था। वह देवपूजन के निमित्त प्रतिदिन देवमन्दिर में जाता और ब्राह्मणों को मुँहमाँगा दान देता था अर्थात् वह बहुत बड़ा दानवीर भी था॥२॥ उसकी युवती पत्नी कमल के सदृश सुन्दर मुखवाली थी तथा बहुत ही पतिपरायणा भी थी। वह ऐसी पतिव्रता थी कि—

चौपाई— **एकै धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पतिपद प्रेमा॥**
परम सती असुराधिप नारी। तेहि बल ताहि न जीत पुरारी॥

ऐसी पतिपरायणा स्त्री अपने पति उल्कामुख के साथ भद्रशीला नदी के तट पर श्रीसत्यनारायण का व्रत और पूजन कर रही थी॥३॥ इसी समय साधु नामक बनिया व्यापार के उद्देश्य से नाव पर बहुत-सा धन रखे हुए वहाँ पर आया॥४॥

हर किसी को अपने बड़ों की गुरु, पिता, माता, नाना, दादी, सास की बात माननी चाहिए यही संस्कार है वहीं घर सदा सुखी रहते हैं।

सन्त दरश को चालिये तजि माया अभिमान, जो-। पग आगे धरे कोटिन यज्ञ समान ।।
अहंकार में तीन जाय बल बुद्धि और वंस, ना मानो तो देख लो रावण, कौरव, कंस ।।

नावं संस्थाप्य तत्तीरे जगाम नृपतिं प्रति। दृष्ट्वा स व्रतिनं भूपं पप्रच्छ विनयान्वितः ॥ ५ ॥

साधुरुवाच

किमिदं कुरुषे राजन्! भक्तियुक्तेतन चेतसा। प्रकाशं कुरु तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम्॥ ६ ॥

राजोवाच

पूजनं क्रियते साधो! विष्णोरतुलतेजसः। व्रतं च स्वजनैःसार्धं पुत्राद्यावाप्तिकाम्यया॥ ७ ॥

वह वैश्य अपनी नौका को नदी के किनारे बाँधकर राजा के निकट आया और वहाँ आने पर देखा कि, राजा अपनी पत्नी के साथ श्रीसत्यनारायण की पूजा कर रहे हैं॥५॥

उस बनिया ने राजा से सविनय पूछा–हे राजन्! आप इतनी श्रद्धा से तन्मय होकर किसका पूजन कर रहे हैं? और किस उद्देश्य से कर रहे हैं? आप इन सब बातों का विशद वर्णन करें, मेरी सुनने की अभिलाषा है॥६॥

राजा ने बनिये के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा–हे साधु! मैं श्रीसत्यनारायण भगवान् की पूजा कर रहा हूँ। स्वजनों के साथ इस पूजन का अभिप्राय पुत्र प्राप्त करना है; क्योंकि सब कुछ होते हुए भी मैं निःसन्तान हूँ; क्योंकि, शास्त्रों के अनुसार धर्माचरण के द्वारा पुत्र की प्राप्ति होना सम्भव है। कहा भी है—

चौपाई— **एक बार भूपति मन माहा। भई गलानि मोरे सुत नाहीं॥**
सृङ्गी रिषिहिं वसिष्ठ बुलावा। पुत्र लागि शुभ जग्य करावा॥ ७॥

भूपस्य वचनं श्रुत्वा साधुः प्रोवाच सादरम्। सर्वं कथय मे राजन्! करिष्येऽहं तवोदितम्॥ ८ ॥
ममापि सन्ततिर्नास्ति ह्येतस्माज्जायते ध्रुवम्। ततो निवृत्त्य वाणिज्यात् सानन्दो गृहमागतः॥ ९ ॥
भार्यायै कथितं सर्वं व्रतं सन्ततिदायकम्। तदा व्रतं करिष्यामि यदा मे सन्ततिर्भवेत्॥१०॥

राजा की बात सुनकर बनिया सम्मान पूर्वक कहा–हे राजन्! आप इस व्रत के करने की समस्त विधि बतलाइए, मैं भी इस व्रत को करूँगा॥८॥ आपकी ही तरह मैं भी सन्तानहीन हूँ। इसलिए मैं निश्चय ही इस व्रत को करूँगा। उस बनिया की जिज्ञासा जानकर राजा ने व्रत की सम्पूर्ण विधि बतला दी। राजा से व्रत का सम्पूर्ण विधान सुनकर वह वैश्य अपने व्यवसाय से निवृत्त होकर हर्षित मन से अपने घर को आया॥९॥

साधु नामक वैश्य ने घर लौटकर अपनी पत्नी से कहा–हे प्रिये! मैं उल्कामुख राजा से एक व्रत सुनकर आया हूँ, जो सभी आकांक्षाओं को पूर्ण करने के अतिरिक्त पुत्रदायक भी है। इसलिए, मैं उस व्रत को अवश्य ही करूँगा। साधु वैश्य की धर्मपत्नी **लीलावती ने पति का समर्थन करते हुए कहा**–हे नाथ! आपका विचार बहुत ही उत्तम है। कहा भी है—

न पुत्रात् परमो लाभो न भार्यायाः परं सुखम्। न सुधर्मात् परं मित्रं नाऽनृतात् पातकं परम्॥
अथवा— **न विद्या समो बन्धुर्न व्याधिसमो रिपुः। न चाऽपत्यसमः स्नेही न च धर्मो दयापरः॥**

इसलिए, हे स्वामी! कल प्रातःकाल ही इस उत्तम व्रत को कर डालना उचित होगा। क्योंकि, **'शुभस्य शीघ्रम्'** कहा गया है। **पत्नी की बात सुनकर बनिये ने कहा**–हे प्रिये! अभी से धन नष्ट करने की क्या आवश्यकता है, जब सन्तान की प्राप्ति हो जायेगी तब व्रत को पूर्ण करूँगा॥१०॥

इति लीलावतीं प्राह पत्नीं साधुः ससत्तमः। एकस्मिन् दिवसे तस्य भार्या लीलावती सती॥११॥
भर्तृयुक्ता-ऽऽनन्दचित्ता-ऽभवद्धर्मपरायणा । गर्भिणी साऽभवत्तस्य भार्या सत्यप्रसादतः॥१२॥
दशमे मासि वै तस्याः कन्यारत्नमजायत। दिने दिने स ववृधे शुक्लपक्षे यथा शशी॥१३॥

पति की बात सुनकर पत्नी ने पूछा–'क्या धन का मूल्य पुत्र से अधिक है?' इस पर **बनिये ने उत्तर दिया**–संसार में धन ही सर्वश्रेष्ठ वस्तु है। क्योंकि एक कवि ने कहा है—

मात कहै मेरो पूत सपूत है, बहन कहै मेरो सुन्दर भैया।
तात कहै मेरो है कुल दीपक, लोक में लाज अरु धीर बँधैया॥
नारि कहै मेरो प्रान पति, अरु जीवन जान की लेहुँ बलैया॥
'गंग' कहैं सुनु शाह अकब्बर, सोई बड़ो जिन गाँठ रुपैया॥

और भी कहा है– **धन ही धन तो सब चहै, प्रभु को चहै न कोय।**
जो प्रभु का सुमिरन करे, धन सुत आपुहिं होय॥

पति से इस प्रकार का उत्तर पाकर पतिव्रता लीलावती चुप हो गयी॥११॥ और पति के संसर्ग से गर्भाधान में तत्पर हुई। कहा भी है—

चौपाई— **यहि विधि गर्भ सहित सब नारी। भई हृदय हरषित सुख भारी॥१२॥**

दस महीना पूरा होने के बाद उस वैश्य की पत्नी लीलावती को कन्या की प्राप्ति हुई। वह कन्या-रत्न शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भाँति प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होने लगी॥१३॥

प्रातः काल उठिके रघुनाथा, मात पिता नाइव माथा॥ बच्चों में संस्कार ऐसे देने चाहिए।

नाम्ना कलावती चेति तन्नामकरणं कृतम्। ततो लीलावती प्राह स्वामिनं मधुरं वचः॥१४॥
न करोषि किमर्थं वै पुरा सङ्कल्पितं व्रतम्?।

साधुरुवाच

विवाहसमये त्वस्याः करिष्यामि व्रतं प्रिये!॥ १५॥
इति भार्यां समाश्वास्य जगाम नगरं प्रति। ततः कलावती कन्या ववृधेपितृवेश्मनि॥१६॥
दृष्ट्वा कन्यां ततः साधुर्नगरे सखिभिः सह। मन्त्रयित्वा द्रुतं दूतं प्रेषयामास धर्मवित्॥१७॥

उस बनिये ने पुत्री के नामकरण के लिए पण्डितों को बुलवाया। पण्डितों ने कन्या के गुण के अनुसार ही उसका नामकरण भी किया। अर्थात् नित्य ही कला-कला बढ़ने से उसका नाम 'कलावती' रखा। **तब बनिये की धर्मपत्नी ने अपने पति से मधुर शब्दों में कहा**–॥१४॥ हे स्वामी! आपने पहले इस बात का संकल्प किया था कि, सन्तान-प्राप्ति के बाद मैं सत्यनारायण का व्रत और पूजन करूँगा। इसलिए अब पूजन का उपयुक्त समय आ गया है। अतः व्रत और पूजन में विलम्ब नहीं करना चाहिए। **पत्नी की बात सुनकर उस अर्थलोलुप बनिये ने कहा**–हे प्रिये! कन्या के जन्मोत्सव में बहुत अधिक धन व्यय हो चुका है। इसलिए अब मैं इस व्रत को कन्या के विवाह के अवसर पर करूँगा॥१५॥ इस प्रकार अपनी पत्नी को आश्वासन देकर वह बनिया नगर में घूमने के लिए चला गया। इधर कन्या कलावती पिता के घर में प्रतिदिन बढ़ती हुई युवावस्था को प्राप्त हुई॥१६॥ एक दिन साधु नामक वैश्य ने कलावती कन्या को अपनी सखियों के साथ भ्रमण करते हुए देखा और मन में सोचा कि, अब कन्या विवाह के योग्य हो गयी है, अतएव वैश्य ने शीघ्र ही दूतों को बुलाकर आदेश दिया॥१७॥

हरि व्यापक सर्वत्र समाना प्रेम ते प्रगट होहिं मैं जाना।

विवाहार्थं च कन्याया वरं श्रेष्ठं विचारय। तेनाऽऽज्ञप्तश्च दूतोऽसौ काञ्चनं नगरं ययौ॥१८॥
तस्मादेकं वणिक्पुत्रं समादाय गतो हि सः। दृष्ट्वा तु सुन्दरं बालं वणिक्पुत्रं गुणान्वितम्॥१९॥
ज्ञातिभिर्बन्धुभिः सार्धं परितुष्टेन चेतसा। दत्तवान् साधुः पुत्राय कन्यां विधि-विधानतः॥२०॥
ततो भाग्यवशात्तेन विस्मृतं व्रतमुत्तमम्। विवाहसमये तस्यास्तेन रुष्टोऽभवत् प्रभुः॥२१॥

इस कन्या के विवाहार्थ कोई श्रेष्ठ और रूपवान् वर की खोज करो। साधु वैश्य की आज्ञा पाकर, दूतों ने वर की खोज में कांचनपुर नामक नगर को प्रस्थान किया॥१८॥ उस नगर में जाकर दूतों ने एक वैश्य-पुत्र को देखा, जो रूपवान् होने के साथ ही गुणवान् और सुलक्षण भी था॥१९॥ उस लड़के को साथ लेकर, दूत लोग साधु वैश्य के पास आये और निवेदन किया–

इस वर में गुण बहुत हैं, रूप, शील, व्यवहार। 'शिव' की कृपा होय तो, करिये नेगाचार॥

दूतों के मुख से वर के सम्बन्ध में ऐसी प्रशंसा-सूचक बात सुनकर, और—

कुलं च शीलं च सनाथता च, विद्यां च वित्तं च वपुर्वयश्च।
एतान् गुणान् सप्त विचिन्त्य देया, कन्या बुधैर्नाऽन्यपि चिन्तनीया॥

उपर्युक्त बातों के अनुसार वर में जितने गुण होने चाहिए वे सब पाकर, साधु बनिया ने अपनी पुत्री का विवाह उस निर्णीत वर के साथ वैदिक रीति से कर दिया॥२०॥ दुर्भाग्यवश उस बनिये को कन्या के विवाह के समय भी सत्यनारायण के व्रत का स्मरण न रहा। भगवान् उसकी इस विस्मृति से अत्यन्त रुष्ट हो गये॥२१॥ कभी घमण्ड नहीं करना चाहिए, भगवान को भूलना नहीं चाहिए

ये माया तेरी, बहुत कठिन है राम,... रक्त माँस हड्डी के ढेर पर, मढ़ा हुआ है चाम, देख उसी की सुन्दरता ही जाती निंद हराम, यह माया तेरी, बहुत कठिन है राम

करता नित्य विरोध क्रोध का, कहता बुरा परिणाम, देता क्रोध [illegible] स्वयं ही होता, [illegible]
यह माया तेरी, बहुत कठिन है राम

ततः कालेन नियतो निजकर्मविशारदः। वाणिज्यार्थं ततः शीघ्रं जामातृसहितो वणिक्॥२२॥
रत्नसारपुरे रम्ये गत्वा सिन्धुसमीपतः। वाणिज्यमकरोत् साधुर्जामात्रा श्रीमता सह॥२३॥
तौ गतौ नगरे रम्ये चन्द्रकेतोर्नृपस्य च। एतस्मिन्नेव काले तु सत्यनारायणः प्रभुः॥२४॥
भ्रष्टप्रतिज्ञामालोक्य शापं तस्मै प्रदत्तवान्। दारुणं कठिनं चास्य महद् दुःखं भविष्यति॥२५॥
एकस्मिन् दिवसे राज्ञो धनमादाय तस्करः। तत्रैव चाऽऽगतश्चौरो वणिजौ यत्र संस्थितौ॥२६॥

विवाह के पश्चात् बनिये ने सोचा कि बहुत-सा धन व्यय हो गया है, इसलिए शीघ्र ही बाहर चलकर व्यापार में लग जाना चाहिए। अतएव अपने दामाद को साथ लेकर वह व्यापार के लिये निकल पड़ा॥२२॥ और रत्नसारपुर नामक नगर में जाकर समुद्र तट पर अपनी नौका को लगा दिया तथा स्वयं दामाद के साथ व्यापार में तल्लीन हो गया॥२३॥ वह नगर राजा चन्द्रकेतु के अधीनस्थ था। ठीक उसी समय श्रीसत्यदेव भगवान् ने॥२४॥ संकल्प-च्युत उस साधु बनिये को शाप दे दिया कि, 'हे बनिया! तुमको भविष्य में मेरे वचन से महान् कष्ट भुगतना होगा।' यह अर्थलिप्सा का परिणाम है—

लोभात् क्रोधः प्रभवति, लोभात् कामः प्रजायते। लोभान्मोहश्च नाशश्च लोभः पापस्य कारणम्॥

और भी कहा है— **लोभ के इच्छा दम्भ बल, काम के केवल नारि।**
क्रोध के परुष वचन बल, मुनिवर कहहिं बिचारि॥२५॥

उस बनिये को शाप देने के पश्चात् भगवान् ने ऐसी लीला की, कि एक दिन दो चोर राजा का बहुत-सा धन उठा ले गये और जहाँ पर साधु बनिया अपने दामाद के साथ शयन कर रहा था, वहाँ पर भागते-भागते जा पहुँचे॥२६॥

चाहे लाख करो चतुराई -। कर्म का लेखन मिटे ना भाई॥
दुःख में सुमिरन सब करें सुख में सुमिरन करे न कोई, जो सुख में सुमिरन सब करें तो काहे को होय दुःख

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे, हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे

तत्पश्चाद्धावकान् दूतान् दृष्ट्वा भीतेनचेतसा। धनं संस्थाप्य तत्रैव स तु शीघ्रमलक्षितः ॥२७॥
ततो दूताः समायाता यत्राऽऽस्ते सज्जनो वणिक्। दृष्ट्वा नृपधनं तत्र बद्ध्वा नीतौ वणिक् सुतौ॥२८॥
हर्षेण धावमानाश्च ऊचुर्नृपसमीपतः। तस्करौ द्वौ समानीतौ विलोक्याज्ञापय प्रभो! ॥२९॥
राज्ञाऽऽज्ञप्तस्ततः शीघ्रं दृढं बद्ध्वा तु तावुभौ। स्थापितौ द्वौ महादुर्गे कारागारे विचारतः ॥३०॥
मायया सत्यदेवस्य न श्रुतं कैस्तयोर्वचः। अतस्तयोर्धनं राज्ञा गृहीतं चन्द्रकेतुना॥३१॥

राजा के सिपाही भी चोरों का पीछा कर रहे थे। चोरों ने जब सिपाहियों को आते देखा तो उस बनिये के पास अपहृत (चुराये हुए) धन को छोड़कर भाग खड़े हुए॥२७॥ सिपाहियों ने बनिया के निकट जाकर देखा कि राजा का सभी धन पड़ा हुआ है। अतः उस बनिये को ही चोर समझकर सिपाही लोग उसे कैद कर लिये और राजा के पास लाये॥२८॥ **सिपाहियों ने राजा से हर्षित होकर निवेदन किया**—हे प्रभो! आपका धन हरण करनेवाले ये दोनों चोर हैं। अब इनके लिए क्या आज्ञा है? यथा—

अब करि कृपा विलोकि मोहिं, आयसु देहु कृपाल। काह करौं सुनि प्रिय वचन, बोले दीनदयाल॥२९॥

सिपाहियों की बात सुनकर **राजा ने उन्हें आदेश दिया**—'इन दोनों चोरों को दृढ़तापूर्वक बाँधकर जेल में डाल दो'॥३०॥ श्रीसत्यदेव भगवान् की माया से मोहित राजा ने बनिये को निरपराधता सिद्ध करने का अवसर नहीं दिया और उस बनिये की बातों पर कोई ध्यान न देकर, उनके पास के समस्त धन को अपने कोषागार में जमा करा लिया॥३१॥

हानि, लाभ, जीवन, मरण, यश, अपयश, सुख, दुःख ये सब भगवान ने अपने पास विधाता ने हाथ रखकी

काहु बैठन कहा न ओही। सखि को सकइ राम कर द्रोही॥
पाप पुण्य जब सम दोउ होई। ईश कृपा नर तन लहै सोई॥

तच्छापाच्च तयोर्गेहे भार्या चैवाऽतिदुःखिता। चौरेणाऽपहृतं सर्वं गृहे यच्च स्थितं धनम्॥३२॥
आधि-व्याधिसमायुक्ता क्षुत्पिपासाति दुःखिता। अन्नचिन्तापरा भूत्वा बभ्राम च गृहे गृहे॥३३॥
एकस्मिन् दिवसे जाता क्षुधार्ता द्विजमन्दिरम्। गत्वाऽपश्यद् व्रतं तस्य सत्यनारायणस्य च॥३४॥
उपविश्य कथां श्रुत्वा वरं प्रार्थितवत्यपि। प्रसादभक्षणं कृत्वा ययौ रात्रौ गृहं प्रति॥ ३५॥
माता कलावती कन्यां कथयामास प्रेमतः। पुत्रि! रात्रौ स्थिता कुत्र किं ते मनसि वर्तते॥३६॥

इधर बनिये की ऐसी दुर्दशा हुई और उधर बनिये के घर पर बनिये की पत्नी और पुत्री को भी महान् कष्ट का सामना करना पड़ा। क्योंकि, बनिये के घर में जितना भी द्रव्य था सभी को चोर उठा ले गये॥३२॥ इस कारण माँ-बेटी मानसिक और शारीरिक यातनाएँ भुगतने लगीं। भूख-प्यास से पीड़ित होकर घर-घर भिक्षा माँगने लगीं॥३३॥

एक दिन उदरपूर्ति के निमित्त कलावती कन्या एक ब्राह्मण के घर में जा पहुँची। वहाँ जाकर उसने देखा—श्रीसत्यदेव भगवान् की पूजा हो रही है॥३४॥ इसलिए, वह भी उसी स्थान पर बैठ गयी और भगवान् की कथा सुनने लगी। कथा समाप्त होने पर प्रसाद लेकर कन्या बहुत रात बीत जाने पर घर को लौटी॥३५॥ **कलावती कन्या के घर पहुँचने पर लीलावती ने क्रोध-मिश्रित स्वर में कहा**—हे पुत्री! तू इतनी रात तक कहाँ रही? कहीं तू किसी के प्रेमपास में तो नहीं आबद्ध हो गयी है? तेरे मन में क्या है? शास्त्रों में स्त्री-स्वतन्त्रता का निषेध किया गया है, क्योंकि,

बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत् पाणिग्रहणस्य यौवने। पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत् स्त्री स्वतन्त्रताम्॥ (मनु.) ॥३६॥

कन्या कलावती प्राह मातरं प्रति सत्त्वरम्। द्विजालये व्रतं मातर्दृष्टं वाञ्छित-सिद्धिदम्॥३७॥
तच्छ्रुत्वा कन्यकावाक्यं व्रतं कर्तुं समुद्यता। सा मुदा तु वणिग्भार्या सत्यनारायणस्य च।॥३८॥
व्रतं चक्रे सैव साध्वी बन्धुभिः स्वजनैः सह। भर्तृजामातरौ क्षिप्रमागच्छेतां स्वमाश्रमम्॥३९॥
अपराधं च मे भर्तुर्जामातुः क्षन्तुमर्हसि। व्रतेनाऽनेन तुष्टोऽसौ सत्यनारायणः पुनः॥४०॥

माता की बात सुनकर पुत्री ने कहा–हे माता, मैं एक ब्राह्मण के यहाँ भिक्षा के निमित्त गयी थी। उस ब्राह्मण के घर पर श्रीसत्यदेव भगवान् का पूजन हो रहा था। उनका व्रत सभी अभिलाषाओं को पूर्ण करनेवाला है। इसीलिए, मैं वहाँ बैठकर कथा सुनने लगी थी॥३७॥ कलावती कन्या की बात उसकी माता के मन में जम गयी और वह भी भगवान् का व्रत करने के लिए तत्पर हुई। और **उस बनिये की पत्नी ने पुत्री से कहा**–तुम पूजन की सामग्री एकत्रित करो, मैं आज सत्यनारायण का व्रत और पूजन करूँगी॥३८॥ अपने बन्धु-बान्धवों के सहित उस बनिये की स्त्री ने भगवान् सत्यनारायण का व्रत और पूजन किया तथा पूजन की समाप्ति पर उसने भगवान् की स्तुति की, कि—हे दीनबन्धु भगवन्! यदि मेरे पति और दामाद कुशलपूर्वक घर को आयेंगे॥३९॥ तो मैं पुनः आपका व्रत और पूजन करूँगी। मेरे पति और दामाद से अनजाने में जो कुछ अपराध हुआ हो, उसे आप क्षमा करें। यथा—

चौपाई— **नाइ चरन सिर कह कर जोरी। नाथ मोहिं कछु नाहिन खोरी॥**
अतिशय प्रबल देव तव माया। छूटइ राम करहु जो दाया॥

दोहा— **श्रवन सुजस सुनि आयउँ, प्रभु भंजन भव भीर। त्राहि त्राहि आरति हरन, सरन सुखद रघुबीर॥**

इस प्रकार लीलावती के व्रत और पूजन से भगवान् प्रसन्न हो गये॥४०॥

"क्या भरोसा है इस जिन्दगी का, साथ देती नहीं किसी का। जब समय मिले प्रभु नाम जप...
साँसों का क्या भरोसा, रुक जाए चलते चलते। जीवन की है जो ज्योति बुझ जाए चलते चलते।
जीवन है चार दिनों का, दो दिन की जिन्दगानी। आयेगा बुढ़ापा थक जाये...

जय राधा माधव, जय हो कुञ्ज बिहारी॥

तृतीयोऽध्यायः

दर्शयामास स्वप्नं हि चन्द्रकेतुं नृपोत्तमम्। वन्दिनौ मोचय प्रातर्वणिजौ नृपसत्तम!॥४१॥
देयं धनं च तत्सर्वं गृहीतं यत्त्वयाऽधुना। नो चेत्त्वां नाशयिष्यामि सराज्य-धन-पुत्रकम्॥४२॥
एवमाभाष्य राजानं ध्यानगम्योऽभवत् प्रभुः। ततः प्रभातसमये राजा च स्वजनैः सह॥४३॥
उपविश्य सभामध्ये प्राह स्वप्नं जनं प्रति। बद्धौ महाजनौ शीघ्रं मोचय द्वौ वणिक्सुतौ॥४४॥
इति राज्ञो वचः श्रुत्वा मोचयित्वा महाजनौ। समानीय नृपस्याऽग्रे प्राहुस्ते विनयान्विताः॥४५॥

तदनन्तर **भगवान् ने राजा चन्द्रकेतु को स्वप्न दिया कि**–'हे राजन्! जो दो बनिये तुम्हारे यहाँ बन्दीगृह में पड़े हैं, उन दोनों को तुम प्रातःकाल कारागार से मुक्त कर देना॥४१॥ और उन सबों का अपहृत धन उन्हें वापस लौटा दो। यदि ऐसा न करोगे तो तुम्हारे राज्य, पुत्र, कोष आदि सभी नष्ट हो जायेंगे'॥४२॥ इस प्रकार भगवान् स्वप्न में राजा से कहकर अदृश्य हो गये। राजा प्रातःकाल उठकर अपने स्वजनों के साथ॥४३॥ सभा में बैठे और रात्रि में देखे हुए स्वप्न को सभी सभासदों से कह सुनाया। यह सुनकर **सभासदों ने कहा**–महाराज, यह स्वप्न सत्य प्रतीत होता है। हम सब लोगों को स्वप्न के अनुसार ही आचरण करना चाहिये। क्योंकि कहा है—

चौपाई– **लखन सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइय कोई॥**

(अथवा) चौपाई– **यह सपना मैं कहौं विचारी। होइ हैं सत्य गये दिन चारी॥**

विचार-विमर्श के पश्चात् राजा ने दूतों को आदेश दिया कि उन कैदी बनियों को कैद से मुक्त कर दो॥४४॥ राजा की आज्ञा से दूतों ने उन दोनों को बन्धन से मुक्त कर दिया और राजा के सम्मुख लाये। इसके बाद दूतों ने राजा से निवेदन किया॥४५॥

आनीतौ द्वौ वणिक्पुत्रौ मुक्तौ निगडबन्धनात्। ततो महाजनौ नत्वा चन्द्रकेतुं नृपोत्तमम्॥४६॥
स्मरन्तौ पूर्ववृत्तान्तं नोचतुर्भयविह्वलौ। राजा वणिक्सुतौ वीक्ष्य वचः प्रोवाच सादरम्॥४७॥
दैवात् प्राप्तं महद्दुःखमिदानीं नास्ति वै भयम्। तदा निगडसन्त्यागं क्षौरकर्माद्यकारयत्॥४८॥
वस्त्रालङ्कारकं दत्वा परितोष्य नृपश्च तौ। पुरस्कृत्य वणिक्पुत्रौ वचसाऽतोषयद् भृशम्॥४९॥

हे राजन्! हम लोग दोनों बनियों को बन्धनमुक्त करके लाये हैं। इसके बाद दोनों बनियों ने राजा को विनम्र भाव से प्रणाम किया॥४६॥ और अपनी पूर्व दशा का स्मरण आते ही दोनों भय से कातर हो गये। किसी कवि ने कहा है—

संयोगाद् विपरीते विधौ, हस्ताद् अपनीते निधौ, बलवन्तोऽपि दुर्बला भवन्ति॥

अर्थात् संयोगवश विधि के प्रतिकूल होने पर, अपने हाथ से धन-सम्पत्ति निकल जाने पर, बलवान् लोग भी दुर्बल हो जाते हैं। और कहा भी गया है—

दोहा— **राजा जोगी अगिन जल, इनकी उलटी रीति। बचते रहियो जगत में थोड़ी पालैं प्रीति॥**

इसके बाद **राजा ने दोनों बनियों को सम्बोधित करते हुए आदरपूर्वक कहा–**॥४७॥ हे साधु! तुम दोनों को दैवयोग से ही यह दुःख भुगतना पड़ा है, इसमें मेरा रंचमात्र भी दोष नहीं है, अब तुम्हें किसी प्रकार का भय नहीं है, तुम बन्धनमुक्त हो। इतना कहकर राजा ने उन दोनों की हथकड़ी-बेड़ी कटवा दी और क्षौरकर्म का आदेश दिया। उन दोनों ने क्षौर कराया॥४८॥ इसके बाद राजा ने उन दोनों को वस्त्राभूषणों से अलंकृत करके मधुर वचनों द्वारा उन्हें सन्तुष्ट किया॥४९॥

जय राधा माधव जय हे कुंज विहारी, जय गोपीजन वल्लभ जय गिरवर...
यशोदा नंदन ब्रज जन रंजन -2, जमुना तीर वन चारी, जय राधा माधव... जय राधा माधव... जय कुंज विहारी

पुराऽऽनीतं तु यद् द्रव्यं द्विगुणीकृत्य दत्तवान्।
प्रोवाच च ततो राजा गच्छ साधो! निजाश्रमम्॥५०॥
राजानं प्रणिपत्याऽऽह गन्तव्यं त्वत्प्रसादतः॥५१॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे चतुर्विंशतिसहस्रसंहितात्मके अन्यदेवरेवाखण्डे सत्यनारायणव्रतकथायां तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

*

और उनका जितना धन हरण कर लिया था, बदले में उसका दुगुना उन्हें प्रदान किया। अन्त में **राजा ने उनसे कहा–** हे साधु बनिया! अब तुम अपने घर को जाओ॥५०॥

राजा की आज्ञा पाकर **बनिये ने उत्तर दिया–**हे राजन्! जब आपका आदेश है, तो हम घर जा रहे हैं। इस प्रकार कहकर वे दोनों अपने घर को चले॥५१॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत रेवाखण्डस्थित सत्यनारायण व्रत-कथा में आचार्य पण्डित शिवदत्तमिश्र शास्त्रि-कृत 'विष्णुप्रिया' हिन्दी टीका सहित तृतीय अध्याय समाप्त॥३॥

पकड़ लो हाथ बनवारी, नहीं तो डूब जायेंगे, हमारा कुछ ना बिगड़ेगा, तुम्हारी लाज जायेगी।
पकड़ लो हाथ बनवारी नहीं तो डूब...
तुम्हारे ही भरोसे पर जमाना छोड़ बैठे हैं
जमाने की तरफ देखो, इसे कैसे निभायेंगे
पकड़ लो हाथ बनवारी नहीं तो डूब...

तारा है सारा जमाना, श्याम हमको भी तारो, हमको भी तारो श्याम हमको भी तारो - तारा है सारा ज...
जा पर कृपा राम की होई ता पर कृपा करहिं सब कोई

जय जय राधा रमण हरि बोल, -1-2। मन तेरा बोले राधे कृष्णा, तन तेरा बोले राधे कृष्णा, जिव्हा तेरी बोले राधे कृष्णा, मुख से निकले राधे कृष्णा, जय जय राधा रमण हरि बोल, जै जै राधा रमण हरि

चतुर्थोऽध्यायः (४)

सूत उवाच

यात्रां तु कृतवान् साधुर्मङ्गलायन-पूर्विकाम्। ब्राह्मणाय धनं दत्वा तदा तु नगरं ययौ॥ १॥
कियद् दूरे गते साधौ सत्यनारायणः प्रभुः। जिज्ञासां कृतवान् साधो किमस्ति तव नौस्थितम्॥ २॥
ततो महाजनौ मत्तो हेलया च प्रहस्य वै। कथं पृच्छसि भो दण्डिन् मुद्रां नेतुं किमिच्छसि॥ ३॥

श्रीसूतजी शौनकादि मुनियों से बोले—हे ऋषियो! यात्रा से पूर्व साधु बनिया ने मंगल कर्म करके ब्राह्मणों को धनादि से तृप्त करके अपने नगर को प्रस्थान किया॥१॥ जब बनिया मार्ग में कुछ दूर तक अग्रसर हुआ तो भगवान् ने मन में विचार किया कि परीक्षा करके इस बनिये के मन की थाह लेनी चाहिए। देखें, इतना कष्ट पाने के बाद भी इसका हृदय निश्छल हुआ है या नहीं, अतः **दण्डी स्वामी का वेश धारण कर साधु बनिया से पूछा**—हे साधु, तुम्हारी नौका में क्या-क्या चीजें हैं॥२॥ प्रश्न को सुनकर धन के गर्व से गर्वित **बनिये ने उत्तर दिया**—हे दण्डी! तुम क्यों पूछते हो? तुम्हारे पूछने का उद्देश्य क्या है? क्या तुम्हारी इच्छा द्रव्य लेने की है? कहा गया है—

कार्यार्थिनां क्षणमपि बहुमूल्यं भवति। धान्यार्थिनां कणमपि बहुमूल्यं भवति। द्रव्यार्थिनां पणमपि बहुमूल्यं भवति।

अर्थात् कार्यार्थियों के लिए एक क्षण का भी बहुत महत्त्व होता है, धान्यार्थियों के लिए एक कण का भी मूल्य होता है और द्रव्यार्थियों के लिए एक पैसा का भी अत्यन्त मूल्य होता है॥३॥

होइहि वहि जो राम रचि राखा, को करि तर्क बढ़ावै साखा॥ दीनदयाल बिरद सम्भारी, मंगल भवन अमंगल हारी, द्रवहु सुदशरथ अजिर बिहारी॥
नासै रोग हरै सब पीरा। जो सुमिरै हनुमत बलबीरा॥ हरहु नाथ मम संकट भारी

लता-पत्रादिकं चैव वर्त्तति तरणौ मम। निष्ठुरं च वचः श्रुत्वा सत्यं भवतु ते वचः॥ ४॥
एवमुक्तो गतः शीघ्रं दण्डी तस्य समीपतः। कियद् दूरे ततो गत्वा स्थितः सिन्धुसमीपतः॥ ५॥
गते दण्डिनि साधुश्च कृत-नित्यक्रिय-स्तदा। उत्थितां तरणीं दृष्ट्वा विस्मयं परमं ययौ॥ ६॥
दृष्ट्वा लतादिकं चैव मूर्च्छितो न्यपतद् भुवि। लब्धसंज्ञो वणिक् पुत्रस्ततश्चिन्तान्वितोऽभवत्॥ ७॥

सबसे गरीब इस संसार वह है जिसकी तृष्णा नहीं मरी, जो सन्तोषी है वो अमीर है।

हे महाराज! बनिये की नाव में जो कुछ होता है, उसे सुनिए—

मेथी मँगरैल हलदी सोंठ तेजपात जीरा है। त्रिफला कपूर धनियाँ, लौंग मिरचा करारा है।
पिस्ता बदाम बनफशा सौंफ कासनी छुहारा है। 'शिव' हींग नमक काला लदा माल बनज़ारा है॥

इस प्रकार का उत्तर पाकर **दण्डी स्वामी (भगवान्) ने कहा**—तुम्हारा ही वचन सत्य हो अर्थात् तुमने जो कुछ कहा है, तुम्हारी नाव में वही सब हो जाय॥४॥ साधु बनिये से इस प्रकार की बात कह दण्डी स्वामी उस स्थान से कुछ दूर हटकर समुद्र के तट पर बैठ गये॥५॥ दण्डी स्वामी के चले जाने के पश्चात् बनिया अपने नित्यकर्म से निवृत्त होने के बाद जब नौका की ओर दृष्टिपात किया, तो उसे जल की सतह से ऊपर उठी हुई पाया। ऐसा देखकर वह अत्यन्त आश्चर्य-चकित हुआ॥६॥ फिर भी वह अपने में साहस बटोरकर नाव के ऊपर जा पहुँचा। नाव में उसने देखा, रत्नों और जवाहिरातों के बदले उसमें लता-पत्राति हैं। ऐसी स्थिति को देखकर साधु बनिया शोकाकुल होकर अचेत हो गया और धरती पर गिर पड़ा। चेतना लौटने पर वह अत्यधिक चिन्तातुर हुआ॥७॥

जिस आदमी जिन्दा होने पर मरने के समान है जो किसी से आशा ना रखता हो वो अमृत

तदा तु दुहितुः कान्तो वचनं चेदमब्रवीत्। किमर्थं क्रियते शोकः? शापो दत्तश्च दण्डिना॥ ८॥
शक्यतेऽनेन सर्वं हि कर्तुं चाऽत्र न संशयः। अतस्तच्छरणं यामो वाञ्छितार्थो भविष्यति॥ ९॥
जामातुर्वचनं श्रुत्वा तत्सकाशं गतस्तदा। दृष्ट्वा च दण्डिनं भक्त्या नत्वा प्रोवाच सादरम्॥१०॥
क्षमस्व चापराधं मे यदुक्तं तव सन्निधौ। एवं पुनः पुनर्नत्वा महाशोकाकुलोऽभवत्॥ ११॥

साधु बनिया के दामाद ने साधु से कहा—हे पिताजी, आप शोक क्यों करते हैं? शास्त्रों में कहा गया है—

गते शोको न कर्त्तव्यो भविष्यं नैव चिन्तयेत्। वर्तमानेषु कार्येषु वर्तयन्ति विचक्षणाः॥

आपको दण्डी स्वामी ने शाप दिया है, उनके कुपित होने का यह परिणाम है। आप व्यर्थ किसी बात की चिन्ता न कीजिए।।८।। इसलिए, आप दण्डी स्वामी की शरण में जाकर, उनसे क्षमा-याचना कीजिए, वे आपकी सभी इच्छाएँ पूर्ण करेंगे। तुलसीदासजी ने भी कहा है—

दोहा— **प्रणत पाल रघुवंशमणि करुणा, सिन्धु खरारि। गये शरण प्रभु राखि हैं, सब अपराध बिसारि।**
मोहमूल बहुशूल प्रद, त्यागहु तुम अभिमान। भजहु राम रघुनायकहि, कृपासिन्धु भगवान॥

चौपाई— **गिरजा रघुपति कर यह रीति। सन्तत करहिं प्रणत पर प्रीति॥**
जगदातमा प्रानपति रामा। तासु विमुख किमि लह विश्रामा॥९॥

दामाद के परामर्श से साधु बनिया दण्डी स्वामी के पास गया और भक्तिभाव से दण्डवत् किया तथा उनसे सम्मानपूर्वक **वैश्य बोला**—॥१०॥ हे प्रभु! मैंने आपसे असत्य भाषण करके जो अपराध किया है, उसे आप क्षमा करें। इस प्रकार साधु

कबिरा सब जग निर्धना, धनवंता ना कोय।
धनवंता सोई जानिये, जा पर राम नाम धन होय॥

प्रोवाच वचनं दण्डी विलपन्तं विलोक्य च। मा रोदीः श्रृणु मद्वाक्यं मम पूजाबहिर्मुखः॥१२॥
ममाऽऽज्ञया च दुर्बुद्धे! लब्धं दुःखं मुहुर्मुहुः। तच्छुत्वा भगवद्वाक्यं स्तुतिं कर्तुं समुद्यतः॥१३॥

साधुरुवाच

त्वन्मायामोहिताः सर्वे ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकसः। न जानन्ति गुणान् रूपं तवाऽऽश्चर्यमिदं प्रभो॥१४॥

बनिया बार-बार दण्डवत् करके शोक-सागर में विह्वल हो गया। कहा भी गया है—

चौपाई— **आतुर समय गहेसि पद जाई। त्राहि त्राहि दयाल रघुराई॥**
अतुलित बल अतुलित प्रभुताई। मैं मतिमन्द जान नहिं पाई॥
निज कृत कर्म जनित फल पायऊँ। अब प्रभु पाहि सरन तकि आयऊँ॥
केहि विधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी॥११॥

साधु को अत्यन्त रुदन करते देखकर **दण्डी स्वामी ने बनिये से कहा**— हे साधु! रोओ मत, तुमने मेरे पूजन का संकल्प किया था, लेकिन अभी तक नहीं किया॥१२॥ इसलिए, हे मूर्ख साधु! मेरी आज्ञा से तुमको बारम्बार कष्ट झेलना पड़ा है। **दण्डी स्वामी की बात सुनकर साधु बनिया उनकी स्तुति करने लगा।** यथा—

चौपाई— **नाइ चरन सिर कह कर जोरी। नाथ मोहिं कछु नाहिन खोरी॥**
अतिशय प्रबल देव तव माया। छूटइ राम करहु जो दाया॥१३॥

हे भगवन्! आपकी माया से ब्रह्मादि देवता भी मोहित हैं और वे भी आपके रूप तथा गुण को नहीं जान सकते, क्योंकि कहा भी है–*दोहा*–**शिव विरंचि कह मोहइ, को है वपुरा आन। अस जिय जानि भजहिं मुनि, मायापति भगवान॥१४॥**

मूढोऽहं त्वां कथं जाने मोहितस्तव मायया। प्रसीद पूजयिष्यामि यथाविभवविस्तरैः॥१५॥
पुरा वित्तं च तत्सर्वं त्राहि मां शरणागतम्। श्रुत्वा भक्तियुतं वाक्यं परितुष्टो जनार्दनः॥१६॥
वरं च वाञ्छितं दत्वा तत्रैवाऽन्तर्दधे हरिः। ततो नौकां समारुह्य दृष्ट्वा वित्तप्रपूरिताम्॥१७॥

मैं तो माया में लिप्त मूर्ख व्यक्ति होकर आपके स्वरूप को कैसे जान सकता हूँ? आप मेरे अपराध को क्षा कीजिए। यथा–

चौपाई– **छमहु नाथ सब अवगुन मेरे।** मैं अपने वित्त के अनुसार आपकी पूजा करूँगा॥१५॥

अब मैं आपकी शरण में हूँ। आप मेरे पूर्व संचित द्रव्य को देकर मेरी रक्षा कीजिए। इस प्रकार साधु की भक्ति युक्त वाणी से दण्डी भगवान् प्रसन्न हो गये। क्योंकि, सज्जनों का क्रोध क्षणिक होता है। कहा भी गया है–

सज्जनस्य क्षणे क्रोधः दुर्जनस्य प्रहरद्वये। चाण्डालस्य अहोरात्रं मूर्खस्य मरणान्तकम्॥१६॥

दण्डी स्वामी साधु बनिया से बोले–

कवित्त– **धन के मद तुम अपने मन से दूर करो, माल खजाना सबै दौलत रह जाना है॥**
थोड़ी-सी जिन्दगानी, फेर लौट नहिं आनी, आये जहाँ से तुम हो वहीं लौट फिर जाना है॥
झगड़े और लड़ाई से कुछ काम नहिं तुमको, ना किसी से बैर नहीं प्रीत को बढ़ाना है॥
लाखन में एक बात तुमसे कहत हौं, खाली हाथ खोल के 'शिव' धाम को सिधाना है॥

ऐसा कहकर दण्डी स्वामी ने साधु बनिये को वरदान दिया कि, तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो अर्थात् तुम्हारा खोया हुआ धन तुम्हें वापस मिल जाय। इस प्रकार अभीष्ट वर प्रदान करके दण्डी स्वामी वहीं अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् साधु ने अपनी नाव में लौटकर देखा–उसके सभी धन नौका में विद्यमान थे, उसने सन्तोष की एक साँस ली॥१७॥

देना है दीजिए जन्म-जन्म का साथ, मेरे सिर पर रख दो कान्हा, अपने ये दोनों हाथ, देना है तो दीजिए
देने वाले श्याम प्रभु तो धन दौलत क्या मांगे, श्याम प्रभु से मांगे तो फिर नाम और ...
मेरे जीवन में अब कर दे, तू कृपा की बरसात – देना है तो दीजिए ...

कृपया सत्यदेवस्य सफलं वाञ्छितं मम। इत्युक्त्वा स्वजनैः सार्द्धं पूजा कृत्वा यथाविधि॥१८॥
हर्षेण चाभवत् पूर्णः सत्यदेव-प्रसादतः। नावं संयोज्य यत्नेन स्वदेशगमनं कृतम्॥१९॥
साधुर्जामातरं प्राह पश्य रत्नपुरीं मम। दूतं च प्रेषयामास निजवित्तस्य रक्षकम्॥२०॥
दूतोऽसौ नगरं गत्वा साधुभार्यां विलोक्य च। प्रोवाच वाञ्छितं वाक्यं नत्वा बद्धाऽञ्जलिस्तदा॥२१॥

बनिये ने अपने स्वजनों से कहा– सत्यनारायणजी की कृपा से मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ है। इसके बाद वह बनिया अपने स्वजनों सहित भगवान् का पूजन करके अपने घर जाने को तत्पर हुआ॥१८॥ श्रीसत्यदेव के प्रसाद से नाव में रखी गयी सभी वस्तुओं की अच्छी तरह देखभाल करके अपने दामाद और परिचारकों के साथ स्वदेश को उस बनिये ने प्रस्थान किया॥१९॥

कुछ ही समय के अनन्तर वह अपने नगर की सीमा के निकट पहुँचकर **साधु वैश्य अपने दामाद से बोला**–हे पुत्र! देखो, वह रत्नपुर नगर दिखाई पड़ रहा है और उसने अपने धन-रक्षक दूतों को अपने घर पर आगमन की सूचना देने के लिए भेजा। जैसे—

चौपाई– **प्रभु हनुमन्तहि कहा बुझाई। धरि बटु रूप अवध पुर जाई॥**
भरतहिं कुशल हमार सुनायेहु। समाचार लै तुम चलि आयेहु॥ २०॥

जब दूत नगर में पहुँचा तो साधु की पत्नी को देखकर करबद्ध हो विनम्र भाव से बोला—॥२१॥

निकटे नगरस्यैव जामात्रा सहितो वणिक्। आगतो बन्धुवर्गैश्च वित्तैश्च बहुभिर्युतः॥२२॥
श्रुत्वा दूतमुखाद् वाक्यं महाहर्षवती सती। सत्यपूजां ततः कृत्वा प्रोवाच तनुजां प्रति॥२३॥
व्रजामि शीघ्रमागच्छ साधुसन्दर्शनाय च। इति मातृवचः श्रुत्वा व्रतं कृत्वा समाप्य च॥२४॥
प्रसादं च परित्यज्य गता साऽपि पतिं प्रति। तेन रुष्टः सत्यदेवो भर्तारं तरणीं तथा॥२५॥
संहृत्य च धनैः सार्धं जले तस्याममज्जयत्। ततः कलावती कन्या न विलोक्य निजं पतिम्॥२६॥

आपके पति और दामाद अपने स्वजनों के साथ कुशलपूर्वक प्रवास से बहुत-सा द्रव्य अर्जित करके नगर के निकट आ पहुँचे हैं। यथा—

चौपाई— **जासु बिरह सोचहु दिनराती। रटहु निरन्तर गुनगन पाती॥**
रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता। आयउ कुशल देव मुनि त्राता॥२२॥

दूत के मुख से ऐसी बात सुनकर उस सती-साध्वी पत्नी ने प्रसन्न होकर उसी क्षण **अपनी कन्या से कहा**–तुम सत्यनारायण का पूजन करो॥२३॥ मैं शीघ्र ही पति का दर्शन करके वापस आती हूँ। इस प्रकार पुत्री को आदेश देकर माता अपने पति के दर्शनार्थ चली गयी और इधर कलावती कन्या माता के कथनानुसार शीघ्र ही सत्यदेव का पूजन समाप्त किया॥२४॥ और भगवान् का प्रसाद ग्रहण किये बिना ही वह भी अपने पति के दर्शनार्थ चल पड़ी। ऐसी उतावली करने से भगवान् ने असन्तुष्ट होकर नौका-सहित उसके पति को जल में निमग्न कर दिया। इसलिए कलावती कन्या अपने पति को न देखकर बहुत ही अधीर हुई॥२५-२६॥

शोकेन महता तत्र रुन्दती चापतद् भुवि। दृष्ट्वा तथा विधां नौकां कन्यां च बहुदुःखिताम्॥२७॥
भीतेन मनसा साधुः किमाश्चर्यमिदं भवेत्। चिन्त्यमानाश्च ते सर्वे बभूवुस्तरिवाहकाः॥२८॥
ततो लीलावतीं कन्यां दृष्ट्वा सा विह्वलाभवत्। विललापातिदुःखेन भर्तारं चेदमब्रवीत्॥२९॥
इदानीं नौकया सार्धं कथं सोऽभूदलक्षितः। न जाने कस्य देवस्य हेलया चैव सा हृता॥३०॥
सत्यदेवस्य माहात्म्यं ज्ञातुं वा केन शक्यते। इत्युक्त्वा विललापैव ततश्च स्वजनैः सह॥३१॥

कलावती शोकाकुल होकर रुदन करने लगी तथा विलपती हुई अचेत होकर धरती पर गिर पड़ी। यथा—

चौपाई— **बहु विधि विलपि चरन लपटानी। परम अभागिनि आपुहिं जानी॥**

इस प्रकार नाव को अदृश्य तथा कन्या को अत्यन्त दुःखित देखकर॥२७॥ साधु बनिया अत्यन्त भयातुर होकर विचार करने लगा कि, यह महान् आश्चर्य है, तथा नाविक लोग भी ऐसी दशा देखकर बहुत ही चिन्तातुर हुए।॥२८॥ इसके पश्चात् अपनी पुत्री को विलाप करती हुई देखकर **लीलावती अपने पति से बोली**–

चौपाई— **नाना विध बिलाप कर तारा। छूटे केश न देह सँभारा॥२९॥**

हे स्वामी! देखते-देखते नौका आँखों से कैसे ओझल हो गयी? हो सकता है, यह कोई दैवी माया या प्रेरणा है॥३०॥ श्रीसत्यनारायण भगवान् का माहात्म्य जानने की शक्ति किसमें है? कहीं उन्हीं के प्रकोप से तो ऐसा नहीं हुआ है। इस प्रकार कहकर वह भी बिलखने लगी॥३१॥

मेरा श्री वैष्णव परिवार, हरि आ जाओ एक बार, -
हरि आ जाओ -। मेरी बिगड़ी बात बना जाओ ॥

मेरी बिगड़ी बात बना जाओ, भक्तों की सुनो पुकार, हरि आ जाओ एक बार ॥
मेरी नैया पार लगा जाओ ॥
मेरी आत्मा करे पुकार, हरि आ जाओ एक बार, -। मेरा श्री वैष्णव परिवार

ततो लीलावती कन्यां क्रोडे कृत्वा रुरोद ह। ततः कलावती कन्या नष्टे स्वामिनि दुःखिता॥३२॥
गृहीत्वा पादुकां तस्याऽनुगन्तुं च मनो दधे। कन्यायाश्चरितं दृष्ट्वा सभार्यः सज्जनो वणिक्॥३३॥
अतिशोकेन सन्तप्तश्चिन्तयामास धर्मवित्। हृतं वा सत्यदेवेन भ्रान्तोऽहं सत्यमायया॥३४॥
सत्यपूजां करिष्यामि यथा-विभव-विस्तरैः। इति सर्वान् समाहूय कथयित्वा मनोरथम्॥३५॥

लीलावती अपनी कन्या को गोद में बैठाकर रुदन करने लगी। तब कलावती अपने पति को नष्ट जानकर विचार करने लगी कि मेरे पति ही जीवित नहीं रहे, तो मैं रहकर क्या करूँगी? क्योंकि शास्त्रों में पतिहीना स्त्रियों का जीवन व्यर्थ कहा गया है। जैसे—

चौपाई— **जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसेहि नाथ पुरुष बिनु नारी॥**

अथवा— **ना तन्त्री विद्यते वीणा ना चक्रो विद्यते रथः। ना पतिः सुखमेधेत या स्यादपि शतात्मजाः॥**

इसलिए अब मुझे पति के साथ सती हो जाना चाहिए॥३२॥ मन में ऐसा निश्चय करके कलावती घर से पति का खड़ाऊँ ले आयी और **अपनी माता से बोली**—

दोहा— **रचि रचि चिता लगायके, पावक देहु लगाय। यहि शरीर को भस्म कर, मिलूँ मैं पति से जाय॥**

कलावती कन्या के संकल्प से वैश्य-दम्पति अत्यन्त दुःखी हुए॥३३॥ साधु बनिया शोक से कातर होकर सोचने लगा—कहीं सत्यदेव भगवान् ने ही तो मेरा धन हरण नहीं कर लिया है अथवा मैं कहीं उनकी माया से तो मुग्ध नहीं हुआ हूँ॥३४॥ इसके बाद **बनिये ने सब लोगों को एकत्रित करके घोषणा की कि,** यदि मेरा कष्ट श्रीसत्यनारायण भगवान् दूर करेंगे तो अपनी सामर्थ्य के अनुसार उनकी पूजा करूँगा॥३५॥

नत्वा च दण्डवद् भूमौ सत्यदेवं पुनः पुनः। ततस्तुष्टः सत्यदेवो दीनानां परिपालकः॥३६॥
जगाद वचनं चैनं कृपया भक्तवत्सलः। त्यक्त्वा प्रसादं तव कन्या पतिं द्रष्टुं समागता॥३७॥
अतोऽदृष्टोऽभवत्तस्याः कन्यकायाः पतिर्ध्रुवम्। गृहं गत्वा प्रसादं च भुक्त्वा सायाति चेत्पुनः॥३८॥
लब्धभर्त्री सुता साधो! भविष्यति न संशयः। कन्यका तादृशं वाक्यं श्रुत्वा गगन-मण्डलात्॥३९॥
क्षिप्रं तदा गृहं गत्वा प्रसादं च बुभोज सा। तत्पश्चात् पुनरागत्य ददर्श स्वजनं पतिम्॥४०॥
ततः कलावती कन्या जगाद पितरं प्रति। इदानीं च गृहं याहि विलम्बं कुरुषे कथम्॥४१॥

ऐसा कहकर वह बनिया पृथ्वी पर नतमस्तक होकर बारम्बार भगवान् को दण्डवत् करने लगा। यथा—

चौपाई— **पाहि पाहि रघुबीर गोसाईं। भूतल परेउ लकुट की नाईं॥**
निज कृत जनित करम फल पायउँ। अब प्रभु पाहि शरण तकि आयउँ॥

उसके ऐसा करने पर भगवान् प्रसन्न हो गये॥३६॥ **भगवान् के प्रसन्न होने पर आकाशवाणी हुई कि,** हे साधु! तेरी पुत्री मेरे प्रसाद का परित्याग करके अपने पति के दर्शनार्थ चली आयी है॥३७॥ इसलिए यह अपने पति को नहीं देख सकी। यदि यह कन्या घर से प्रसाद ग्रहण करके आये॥३८॥ तो इसे निश्चय ही पति प्राप्त होगा। कन्या ने ऐसी आकाशवाणी सुनकर॥३९॥ शीघ्र ही घर को प्रस्थान किया और जाकर प्रसाद ग्रहण किया। इसके पश्चात् पुनः लौटकर आने पर स्वजनों के साथ अपने पति को देखा॥४०॥ तदनन्तर **कन्या ने अपने पिता से कहा**—पिताजी, अब आप शीघ्र घर को चलें, विलम्ब क्यों कर रहे हैं? ॥४१॥ श्रीमन् नारायण नारायण नारायण।, श्री नारायण नारायण नारायण।

अच्युतम केशवं कृष्ण दामोदरं, राम नारायणं जानकी वल्लभम्।
नाम जपते चलो, काम करते चलो; हर समय कृष्ण ध्यान करते चलो।। याद आयेगी उनको कभी ना कभी, कृष्ण दर्शन तो देंगे कभी ना कभी।

तच्छ्रुत्वा कन्यकावाक्यं सन्तुष्टोऽभूद् वणिक् सुतः।
पूजनं सत्यदेवस्य कृत्वा विधिविधानतः॥४२॥
धनैर्बन्धुगणैः सार्धं जगाम निजमन्दिरम्। पौर्णमास्यां च संक्रान्तौ कृतवान् सत्यस्य पूजनम्॥४३॥
इह लोके सुखं भुक्त्वा चान्ते सत्यपुरं ययौ॥४४॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे चतुर्विंशतिसहस्रसंहितात्मके अन्यदेवरेवाखण्डे सत्यनारायणव्रतकथायां चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

*

कन्या की बात से साधु बनिया प्रसन्न हुआ और उसी क्षण, उसी स्थान पर श्रीसत्यनारायण भगवान् का विधिवत् पूजन करके॥४२॥ धन और बन्धुओं के साथ हर्षित होकर अपने घर को आया। तदनन्तर वह प्रत्येक मास पूर्णिमा और संक्रान्ति को श्री सत्यदेव भगवान् का पूजन करने लगा॥४३॥

श्रीसूतजी महाराज शौनकादि ऋषियों से कहते हैं–इस प्रकार वह साधु बनिया व्रत के प्रभाव से इस लोक में सम्पूर्ण सुखों का उपभोग करके अन्त में विष्णुलोक को चला गया॥४४॥

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत रेवाखण्डस्थित सत्यनारायण व्रत-कथा में आचार्य पण्डित शिवदत्तमिश्र शास्त्रि-कृत 'विष्णुप्रिया' हिन्दी टीका सहित चौथा अध्याय समाप्त॥४॥

*

मंगल भवन अमंगल हारी द्रवहु सु दसरथ अजिर बिहारी

काहु न कोउ सुख-दुख दाता। निज कर्म कृत भोग सब भ्राता

पञ्चमोऽध्यायः (५)

प्रसाद - प्र - प्रत्यक्ष
सा - साक्षात
द - दर्शन

सूत उवाच

अथाऽन्यत् सम्प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं मुनिसत्तमाः। आसीत्तुङ्गध्वजो राजा प्रजापालनतत्परः॥१॥
प्रसादं सत्यदेवस्य त्यक्त्वा दुःखमवाप सः। एकदा स वनं गत्वा हत्वा बहुविधान् पशून्॥२॥
आगत्य वटमूलं च दृष्ट्वा सत्यस्य पूजनम्। गोपाः कुर्वन्ति सन्तुष्टा भक्तियुक्ताः स-बान्धवाः॥३॥

श्रीसूतजी ने शौनकादि ऋषियों से कहा–हे मुनियो! अब आगे एक कथा और आप लोगों को सुनाता हूँ, आप लोग उसे श्रवण करें। सत्ययुग में तुङ्गध्वज नाम का एक राजा राज्य करता था। वह अपनी प्रजा को पुत्रवत् मानता और उनके रक्षण-कार्य में तत्पर रहता था। शास्त्रकारों ने भी कहा है—

प्रजा सुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्। नात्मप्रियं प्रियं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं प्रियम्॥१॥

वह प्रजापालक धर्मात्मा राजा भी सत्यदेव के प्रसाद का परित्याग करके महान् कष्ट को प्राप्त हुआ। एक बार वह राजा शिकार के लिए वन में गया और तरह-तरह के हिंस्र पशुओं का वध किया॥२॥ पश्चात् वहीं एक वट वृक्ष था, जिसपर बहुत दिनों से भूखा-प्यासा एक प्रेत रहता था। राजा को देखकर वह तत्काल उनको खाने के लिए दौड़ा। राजा बहुत चिन्तित मन से उसके पूर्व जन्म का वृत्तान्त पूछा। उत्तर में **प्रेत ने कहा**–महाराज! मैं गुजरात का निवासी हूँ। पूर्व जन्म के पाप से मैं इस प्रेतयोनि में पड़कर इधर-उधर भटक रहा हूँ। यदि इससे मुक्त होने का कोई साधन आप बतायें तो मैं

राजा दृष्ट्वा तु दर्पेण न गतो न ननाम सः। ततो गोपगणाः सर्वे प्रसादं नृपसन्निधौ॥४॥
संस्थाप्य पुनरागत्य भुक्त्वा सर्वे यथेप्सितम्। ततः प्रसादं सन्त्यज्य राजा दुःखमवाप सः॥५॥

आपका बहुत उपकार मानूँगा। राजा उसे साथ चलने के लिए एवं खाने-पीने आदि की सारी सुविधाएँ प्रदान करने तथा प्रेतयोनि से मुक्त कराने का भी आश्वासन दिया। किन्तु **राजा ने कहा–'स्वभावो दुरतिक्रमः'** के अनुसार तुम साथ चलने पर मेरा कोई अनिष्ट तो नहीं करोगे? **प्रेत ने कहा**–आप तो मेरे मित्र हो गये, मित्र से विश्वासघात करना सर्वथा अनुचित है। कहा भी गया है—

मित्रद्रोही कृतघ्नश्च ये च विश्वासघातकाः। ते नरा नरकं यान्ति यावच्चन्द्र-दिवाकरौ॥

इस तरह का आश्वासन देकर प्रेत राजा के साथ चल पड़ा। आखेट (शिकार करने) के पश्चात् राजा ने अपने घर की राह ली। मार्ग में एक वट वृक्ष मिला, जिसके नीचे राजा विश्राम करने लगा। और प्रेत उस वृक्ष पर जा बैठा। राजा ने देखा–बहुत से ग्वाल-बाल श्रीसत्यनारायण भगवान् का श्रद्धापूर्वक पूजन कर रहे हैं॥३॥

इस प्रकार देखकर के भी वह राजा धन के गर्व से गर्वित होने के कारण भगवान् के निकट नहीं गया और न तो नतमस्तक ही हुआ। पूजन समाप्त होने पर गोपों ने प्रसाद वितरण के समय राजा को भी प्रसाद दिया॥४॥ किन्तु राजा प्रमादवश उस प्रसाद को ग्रहण नहीं किया और वहाँ से उठकर अपने घर को चला गया। उधर गोपों ने भगवान् का प्रसाद ग्रहण किया। चिर बुभुक्षित होने के कारण उस प्रसाद को प्रेत बड़ी प्रसन्नता पूर्वक खा गया। जिसके कारण तत्काल स्वर्ग से उसके लिए विमान आया और उस पर बैठकर वह स्वर्ग चला गया। और राजा को प्रसाद के परित्याग से अत्यन्त कष्ट मिला॥५॥

पता नहीं किस रूप में आकर नारायण मिल जायेगा।

निरमल मन के दर्पण में वह राम के दर्शन पायेगा॥ पता नहीं ...
नियत भेद नहीं करती, जो लेती है वो देती है, जो बोयेगा वो काटेगा ये जग कर्मों की खेती है।
यदि कर्म तेरे पावन हैं सभी, डूबेगी नहीं तेरी नाव कभी, तेरी बाँह पकड़ने को, वो भेष बदलकर आयेगा - पता ...

तस्य पुत्रशतं नष्टं धन-धान्यादिकं चयत्। सत्यदेवेन तत्सर्वं नाशितं मम निश्चितम्॥६॥
अतस्तत्रैव गच्छामि यत्र देवस्य पूजनम्। मनसा तु विनिश्चित्य ययौ गोपालसन्निधौ॥७॥
ततोऽसौ सत्यदेवस्य पूजां गोपगणैः सह। भक्ति-श्रद्धान्वितो भूत्वा चकार विधिना नृपः॥८॥
सत्यदेव-प्रसादेन धन-पुत्रान्वितोऽभवत्। इह लोके सुखं भुक्त्वा चाऽन्ते सत्यपुरं ययौ॥९॥
य इदं कुरुते सत्यं व्रतं परम-दुर्लभम्। श‍ृणोति च कथां पुण्यां भक्तियुक्तां फलप्रदाम्॥१०॥

उसके सौ पुत्रों की मृत्यु हो गयी और उसका सम्पूर्ण राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। ऐसी स्थिति देखकर राजा ने अपने मन में विचार किया कि, सत्यनारायण प्रभु के प्रसाद परित्याग करने से ही मेरी यह दुर्दशा हुई है। क्योंकि, प्रभु में अपार शक्ति निहित होती है। कहा भी है—

रङ्कं करोति राजानं राजानं रङ्कमेव च। धनिनं निर्धनं चैव निर्धनं धनिनं तथा॥

और भी कहा गया है–**नर-नारी-नृपाणां च भवेद् दुःस्वप्ननाशनम्। ऐश्वर्यमतुलं तेषामारोग्यं पुष्टिवर्धनम्॥६॥**

ऐसा विचार करके जहाँ पर गोप लोग पूजन कर रहे थे, उस स्थान पर राजा पुनः गया॥७॥ वहाँ जाकर राजा ने गोपों के साथ भक्तिपूर्वक श्रीसत्यदेव भगवान् का विधिवत् पूजन किया॥८॥ पूजन के प्रभाव से राजा पुनः पुत्रादि तथा धन-धान्य से परिपूर्ण हो गया और समस्त सांसारिक सुखों का उपभोग करके अन्त में वैकुण्ठपुरी को प्राप्त हुआ॥९॥

श्रीसूतजी महाराज बोले–हे शौनकादि मुनियो! जो प्राणी श्रीसत्यदेव भगवान् के इस परम दुर्लभ व्रत को करता तथा मनोवांछित फलदायक एवं पुण्यकारी कथा को सुनता है॥१०॥

धनधान्यादिकं तस्य भवेत् सत्यप्रसादतः। दरिद्रो लभते वित्तं बद्धो मुच्येत बन्धनात्॥११॥
भीतो भयात् प्रमुच्येत सत्यमेव न संशयः। ईप्सितं च फलं भुक्त्वा चान्ते सत्यपुरं व्रजेत्॥१२॥
इति वः कथितं विप्राः सत्यनारायणव्रतम्। यत्कृत्वा सर्वदुःखेभ्यो मुक्तो भवति मानवः॥१३॥
विशेषतः कलियुगे सत्यपूजा फलप्रदा। केचित् कालं वदिष्यन्ति सत्यमीशं तमेव च॥१४॥
सत्यनारायणं केचित् सत्यदेवं तथापरे। नानारूपधरो भूत्वा सर्वेषामीप्सितप्रदम्॥१५॥

उसे भगवान् श्रीसत्यनारायण के प्रसाद से धन-धान्य की प्राप्ति होती है। दरिद्र व्यक्ति दारिद्र्य से छूट जाता है तथा बन्धन-बद्ध व्यक्ति बन्धन से मुक्त हो जाता है॥११॥ भयभीत मनुष्य भय से रहित होता है। यह बात बिल्कुल सत्य है, इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है। श्रीसत्यदेव के प्रसाद से वह प्राणी इस लोक में सभी सुखों को भोगकर अन्त में मुक्ति लाभ करता है॥१२॥ हे ब्राह्मणो! मैं आप लोगों से सत्यदेव के जिस व्रत को कहा है, उसे करनेवाले संसार-सागर से मुक्त हो जाते हैं॥१३॥ और इस कलिकाल में तो श्रीसत्यनारायण भगवान् का व्रत ही विशेष रूप से फलदायक कहा गया है। कहा भी है—

चौपाई— **सब भरोस तजि जो भज रामहिं। प्रेम समेत गाव गुनग्रामहिं।**
सोइ भव तर कछु संशय नाहीं। नाम प्रताप प्रकट कलिमाहीं॥

इस प्रकार अभिलषित फल देने वाले प्रभु को कोई 'काल' तथा कोई 'ईश' की संज्ञा देता है॥१४॥ कोई सत्यनारायण तथा कोई-कोई सत्यदेव भी कहते हैं। श्रीसत्यदेव भगवान् विविध रूप धारण करके भू-लोक के मनुष्यों का मनोरथ पूर्ण करते हैं॥१५॥

भविष्यति कलौ सत्य-व्रतरूपी सनातनः। श्रीविष्णुना धृतं रूपं सर्वेषामीप्सितप्रदम्॥१६॥
य इदं पठते नित्यं श्रृणोति मुनिसत्तमाः। तस्य नश्यन्ति पापानि सत्यदेवप्रसादतः॥१७॥
व्रतं यैस्तु कृतं पूर्वं सत्यनारायणस्य च। तेषां त्वपर-जन्मानि कथयामि मुनीश्वराः॥१८॥
शतानन्दो महाप्राज्ञः सुदामा ब्राह्मणोऽभवत्। तस्मिन् जन्मनि श्रीकृष्णं ध्यात्वा मोक्षमवाप ह॥१९॥
काष्ठभारवहो भिल्लो गुहराजो बभूव ह। तस्मिन् जन्मनि श्रीरामं सेव्यं मोक्षं जगाम वै॥२०॥

इस कलिकाल में यही सनातन विष्णु भगवान् सत्यरूप धारण करके सबकी अभिलाषा पूरी करते हैं॥१६॥

श्रीसूतजी कहते हैं—हे मुनीश्वरो! जो व्यक्ति इस कथा का पाठ और श्रवण करता है वह सत्यदेव के प्रसाद से निष्पाप हो जाता है॥१७॥ हे मुनियो! जिन-जिन लोगों ने पूर्व जन्म में श्रीसत्यनारायण भगवान् का पूजन किया था, उनके दूसरे जन्म का वृत्तान्त मैं आप लोगों को सुनाता हूँ, सुनिये॥१८॥ शतानन्द नाम के दरिद्र ब्राह्मण दूसरे जन्म में सुदामा के नाम से विख्यात हुए और श्रीकृष्ण की उपासना करके परमधाम को गये॥१९॥ भील जाति का लकड़हारा दूसरे जन्म में श्रृङ्गबेर का निषाद राज हुआ और भगवान् के रूप में अवतरित महाराज श्रीरामचन्द्रजी को वनवास काल के समय गंगा से पार उतार कर स्वयं भी भव-सिन्धु से पार हो गया। कहा भी है—

दोहा—**पद पखारि जलपान करि, आपु सहित परिवार। पितर पार करि प्रभुहिं पुनि, मुदित गयेउ ले पार॥२०॥**

हरे कृष्ण गोविन्द, हरे मुरारी हे नाथ नारायण वासुदेव ॥
जो किस्मत जगत की बनाते है सारे, तो क्यूँ ना चलें हम उन्हीं को पुकारे, यही मंत्र जपते हैं ऋषि सारे-। हे कृष्ण

उल्कामुखो महाराजो नृपो दशरथोऽभवत्। श्रीरङ्गनाथं सम्पूज्य श्रीवैकुण्ठं तदागमत्॥२१॥
धार्मिकः सत्यसन्धश्च साधुर्मोरध्वजोऽभवत्। देहार्धं क्रकचैश्छित्वा दत्वा मोक्षमवाप ह॥२२॥

उल्कामुख नाम के राजा अगले जन्म में महाराजा दशरथ हुए, जो श्रीरंगनाथजी की भक्ति से मोक्ष को प्राप्त हुए।।२१।। साधु नामक बनिया दूसरे जन्म में परम धर्मधुरीण मोरध्वज नाम का राजा हुआ। वह राजा इतना धर्मनिष्ठ और सत्यवादी था कि अपनी स्त्री के साथ अपने ज्येष्ठ पुत्र का दाहिना अंग काटकर ब्राह्मण वेशधारी श्रीकृष्ण को देना स्वीकार किया।

कथा इस प्रकार है–एक बार भगवान् ने सोचा कि मोरध्वज राजा बहुत बड़ा दृढ़प्रतिज्ञ और सत्यवादी है, इसलिए इसकी सत्यवादिता की परीक्षा लेनी चाहिए। ऐसा निश्चय करके भगवान् ने अर्जुन को सिंह के रूप में और स्वयं ब्राह्मण के वेश में राजा के द्वार पर आये। उनके साथ रस्सी में बँधा हुआ उनका सिंह भी था। **भगवान् ने राजा से कहा**–हे राजन्! मेरा सिंह बहुत भूखा है, इसे भोजन चाहिये। **राजा बोला**–आपका सिंह क्या खाना चाहता है? **भगवान् ने उत्तर दिया**–तुम्हारे ज्येष्ठ पुत्र के दाहिने अंग का मांस भक्षण करना चाहता है। लेकिन वह अपना शिकार स्वयं नहीं करेगा। यदि आप अपनी पत्नी के सहयोग से आरे द्वारा उसका अङ्गच्छेद करें और उसकी आँखों से आँसू नहीं निकले तो मेरा सिंह उसका मांस भक्षण कर सकता है। यह सुनकर **राजा ने कहा**–आपकी बात मुझे मान्य है। अन्त में राजा ने वैसा ही किया जैसा ब्राह्मण ने बतलाया था। परन्तु आरे से अंगच्छेदन के समय बालक की बाँयी आँख से आँसू ढुलक पड़े। देखकर **ब्राह्मण ने कहा**–आँसू आ जाने के फलस्वरूप अब मेरा सिंह मांस भक्षण नहीं करेगा। यह सुनकर **लड़के ने उत्तर दिया**–महाराज,

ब्रज के नन्दलाला, राधा जी के सांवरिया, सभी दुःख दूर हुए, जब से तेरा नाम लिया
नैनों में श्याम बसे, मन में बनवारी, सुध बिसरा गी मुरली की धुन प्यारी। मन के मधुबन में रास रचाये रसिया॥
सभी दुःख दूर भये, जब से तेरा नाम लिया --

तुङ्गध्वजो महाराजः स्वायम्भुरभवत् किल। सर्वान् भागवतान् श्रुत्वा श्रीवैकुण्ठं तदागमत्॥२३॥
भूत्वा गोपाश्च ते सर्वे ब्रजमण्डलवासिनः। निहत्य राक्षसान् सर्वान् गोलोकं तु तदा ययुः॥२४॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे चतुर्विंशतिसहस्रसंहितात्मके अन्यदेवरेवाखण्डे सत्यनारायणव्रतकथायां पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

इति देवरिया-मण्डलान्तर्गत-"मझौली राज्य" निवासि (सम्प्रति वाराणसीस्थ)-लब्धप्रतिष्ठ-पण्डित-श्रीसन्तशरणमिश्रात्मज-शिवदत्तमिश्रशास्त्रिकृत-'विष्णुप्रिया' हिन्दीटीका-सहिता सत्यनारायण-व्रतकथा समाप्ता।

*

नाचे नन्दलाल, नचावे हरि की मैया।

खाने की बात तो दाहिनी अंग की है, बाँयें की नहीं। बाँये अंग को इस बात का खेद है कि, वह आपके किसी काम न आ सका। इसी कारण बाँयें नेत्र से आँसू उमड़ आये। इस उत्तर से भगवान् बहुत ही सन्तुष्ट हुए और राजा को वैकुण्ठपुरी का अधिकारी बनाया।।२२।। तुंगध्वज नामक राजा दूसरे जन्म में स्वायम्भु मनु हुए और सम्पूर्ण भागवत की कथा को सुनकर परमगति को प्राप्त हुए।।२३।।

इस प्रकार भगवान् सत्यनारायण की पूजा में तत्पर जो गोपगण थे, वे सभी दूसरे जन्म में ब्रजमण्डल के निवासी हुए एवं उन्होंने स्वयं श्रीकृष्ण की सहायता से समस्त राक्षसों का संहार कर गोलोक में गये।।२४।।

इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत चतुर्विंशति-सहस्र-संहितात्मक अन्यदेव रेवाखण्डस्थित सत्यनारायण व्रत-कथा में आचार्य पण्डित श्रीशिवदत्तमिश्र शास्त्रि-कृत 'विष्णुप्रिया' हिन्दी टीका सहित पञ्चम अध्याय समाप्त॥५॥

*

मेरा आपकी कृपा से सब काम हो रहा है। करते हो तुम कन्हैया, मेरा नाम हो रहा है॥ मेरा आपकी
पतवार के बिना ही मेरी नाव चल रही है। हैरान है जमाना, मंजिल भी मिल रही है॥

करता नहीं मैं कुछ भी, सब काम हो रहा है। करते हो तुम कन्हैया, मेरा नाम हो रहा है -
तेरी प्रेरणा से ही सब, कमाल हो रहा है, मेरा आपकी कृपा से, सब काम हो रहा है - मेरा आपकी कृपा से

मेरे दिल मे गयी समाय भाव नहीं आर्थि

कथावसाने पूजनं हवनं च

पञ्चभूसंस्कारपूर्वकमग्निं संस्थाप्य, हस्ते वरणद्रव्यं जलं च गृहीत्वा, 'अस्मिन् सत्यनारायण-व्रत-कथा-हवन-कर्मणि एभिर्वरणद्रव्यैरमुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणं ब्रह्मत्वेन त्वामहं वृणे' इति पठित्वा, सङ्कल्पं कुर्यात्। तद्यथा–

हस्तपरिमितां चतुरस्रां वेदीं कुशैः परिसमूह्य, तान् कुशानैशान्यां परित्यज्य, गोमयोदकेनोपलिप्य, स्रुवमूलेन त्रिरुल्लिखय्, उल्लेखनक्रमेणाऽनामिकाङ्गुष्ठाभ्यां मृदमुद्धृत्य, जलेनाऽभ्युक्ष्य, अग्निमुपसमाधाय।

कथा श्रवण के बाद पूजन और हवन–व्रती यजमान को चाहिये कि, वह सर्वप्रथम पंचभूसंस्कार पूर्वक वेदी में अग्नि स्थापन कर, पश्चात् हाथ में जल एवं वरण-सामग्री लेकर, मास-पक्षादि का उच्चारण करते हुए **'अस्मिन् सत्यनारायण-व्रत-कथा-हवन-कर्मणि०'** से लेकर **'त्वामहं वृणे'** तक पढ़कर ब्रह्मा का वरण करे। ब्रह्मा भी **'वृतोऽस्मि'** इस प्रकार कहें। तत्पश्चात् कुशकण्डिका कर, आघार और आज्यभाग का हवन कर, पश्चात् ग्रहों की एवं प्रधान देवता की आहुति प्रदान करे। वह इस प्रकार है—

हाथ-भर लम्बी-चौड़ी वेदी का निर्माण कर, उसे कुशा द्वारा परिसमूहन करता हुआ उन कुशाओं को ईशानकोण में परित्याग कर, गोबर-मिश्रित जल से उक्त वेदी को लीपकर, स्रुवा के मूल भाग से वेदी में तीन रेखा खींचकर, अनामिका, अंगुष्ठ से रेखास्थित मृत्तिका को हटाकर, पुनः जल से सिंचित कर, अग्नि-स्थापन करे।

तदनन्तरं दक्षिणतो ब्रह्मासनादारभ्य-पर्युक्षणान्तं कुशकण्डिकां कृत्वा, ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम। ॐ इन्द्राय स्वाहा, इदमिन्द्राय न मम। ॐ अग्नये स्वाहा, इदमग्नये न मम। ॐ सोमाय स्वाहा, इदं सोमाय न मम।

नवग्रहहोमः—**ॐ आ कृष्णेन रजसावर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च। हिरण्येन सविता रथेन देवो याति भुवनानि पश्यन्।। सूर्याय स्वाहा, इदं सूर्याय न मम।।१।। ॐ इमं देवा ऽअसपत्नँ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्येष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाँ राजा।। चन्द्रमसे स्वाहा, इदं चन्द्रमसे न मम। ॐ अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या ऽअयम्। अपाँ रेताँसि जिन्वति।। भौमाय स्वाहा, इदं भौमाय न मम। ॐ उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहित्वमिष्टापूर्ते सँ सृजेथामयं च। अस्मिन्त्सधस्थे ऽअध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत।। बुधाय स्वाहा, इदं बुधाय न मम। ॐ बृहस्पते अति यदर्यो ऽअर्हाद्द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु। यद्दीदयच्छवस ऽऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्।। बृहस्पते स्वाहा, इदं बृहस्पतये न मम।**

तदनन्तर वेदी की दक्षिण ओर ब्रह्मा के आसन-स्थापन से लेकर पर्युक्षणान्त पर्यन्त कुशकण्डिका कर, **'ॐ प्रजापतये स्वाहा'** से लेकर **'इदं सोमाय न मम'** पर्यन्त कहकर आहुति देवे।

नवग्रह होम–तत्पश्चात् **'आ कृष्णेन रजसा०'** लेकर **'इदं केतवे न मम'** तक पढ़कर सूर्यादि नवग्रहों को आहुति प्रदान करें।

ॐ अन्नात्परिस्रुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिवत्क्षत्रं पयः सोमं प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपान शुक्रमन्धस ऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु।। शुक्राय स्वाहा, इदं शुक्राय न मम। ॐ शन्नो देवीरभिष्टय ऽआपो भवन्तु पीतये। शं योरभिस्रवन्तु नः।। शनैश्चराय स्वाहा, इदं शनैश्चराय न मम। ॐ कया नश्चित्र ऽआभुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता।। राहवे स्वाहा, इदं राहवे न मम। ॐ केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्य्या ऽअपेशसे। समुषद्भिरजायथाः।। केतवे स्वाहा, इदं केतवे न मम।

अग्निपूजनम्—हस्ते गन्धा-ऽक्षत-पुष्पाण्यादाय, ॐ अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुप ब्रुवे। देवाँ२।। आसादयादिह।। इति मन्त्रेणाऽग्निपूजनं कुर्यात्।

प्रधानहोमः—ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढस्य पाँसुरे स्वाहा।। अथवा–'श्रीसत्यनारायणाय स्वाहा' इत्यनेनाऽष्टोत्तरशतं (१०८) वारं घृतेन हवनं कुर्यात्।

स्विष्टकृद्धवनम्—ॐ अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम।। इति मन्त्रं पठित्वा, सर्वं साकलमेकवारेणैव जुहुयात्।

अग्नि पूजन–हाथ में गन्ध, अक्षत, पुष्प लेकर '**ॐ अग्निं दूतं०**' इस मन्त्र से अग्निदेव का पूजन करे।

प्रधान होम–तदनन्तर '**ॐ इदं विष्णु०**' इस मन्त्र अथवा '**श्रीसत्यनारायणाय स्वाहा**' पढ़कर एक सौ आठ बार घृत की आहुति प्रदान करे।

स्विष्टकृत हवन–'**ॐ अग्ने नय०**' मन्त्र पढ़कर एक बार में ही अवशिष्ट (बचा हुआ) साकल का हवन करे।

भूरादि-नवाहुति-प्रदानम्—ॐ भूः स्वाहा, इदमग्नये न मम। ॐ भुवः स्वाहा, इदं वायवे न मम। ॐ स्वः स्वाहा, इदं सूर्याय न मम। ॐ त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेडो अवयासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषाँसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा, इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम। ॐ स त्वं नो अग्ने ऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ। अवयक्ष्व नो वरुणँ रराणो वीहि मृडीकँ सुहवो न एधि स्वाहा, इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम। ॐ अयाश्चाग्नेस्यनभिशस्ति याश्च सत्यमित्वमया असि। अयानो यज्ञं वहास्ययानो धेहि भेषजँ स्वाहा, इदमग्नये अयसे न मम। ॐ ये ते शतं वरुणं ये सहस्रियं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः। तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा, इदं वरुणाय, सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च न मम। ॐ उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा, इदं वरुणायादित्याया अदितये न मम। ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम।

त्र्यायुषकरणम्—स्रुवेण भस्म गृहीत्वा, अनामिकया, 'ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेः' इति ललाटे', 'कश्यपस्य त्र्यायुषम्' इति ग्रीवायाम्, 'यद्देवेषु त्र्यायुषम्' इति दक्षिणबाहुमूले, 'तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्' इति हृदि।

भूरादिनवाहुति–उसके बाद '**ॐ भूः स्वाहा**' से लेकर '**इदं प्रजापतये न मम**' तक पढ़कर घृताहुति प्रदान करे।

त्र्यायुषकरण–स्रुवा से वेदी का भस्म लेकर अनामिका अँगुलि से '**ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेः०**' से '**तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्**' तक पढ़कर यजमान के ललाट, ग्रीवा, दक्षिण बाहुमूल और हृदय में भस्म लगाये।

पूर्णपात्रदानम्—**हस्ते जलमादाय, कृतैतत् सत्यनारायण-व्रत-कथा-हवनकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थम् इदं पूर्णपात्रं स-तण्डुलं स-दक्षिणाकं ब्रह्मणे तुभ्यमहं सम्प्रददे। पुनर्जलं गृहीत्वा, कृतैतत् व्रतकथाश्रवणकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं यथासङ्ख्याकान् ब्राह्मणान् भोजयिष्ये, तेभ्यस्ताम्बूलदक्षिणां च दास्ये।**

भूयसी-सङ्कल्पः—**'हस्ते जलमादाय, कृतैतत्—हवनकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं तन्मध्ये न्यूनातिरिक्त-दोषपरिहारार्थं नानानाम-गोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो विभज्य भूयसीं दक्षिणां दातुमहमुत्सृजे।**

कर्पूरार्तिक्यम्— **कर्पूरं प्रज्वालय,** *पृष्ठे ७९-८०* **द्रष्टव्यम्। ततः**

कर्पूरगौरं करुणावतारो संसारसारं भुजगेन्द्रहारम्।
सदा वसन्तं हृदयारविन्दे भवं भवानी सहितं नमामि।।

इति श्लोकं पठित्वा, सत्यनारायणस्यार्तिक्यं कुर्यात्।

पूर्णपात्र दान–हाथ में जल लेकर, **'कृतैतत्०'** से **'ब्रह्मणे तुभ्यमहं सम्प्रददे'** पर्यन्त पढ़कर ब्रह्मा को पूर्णपात्र दे। पुनः हाथ में जल लेकर, **'कृतैतत्०'** से 'ताम्बूल-दक्षिणां च दास्ये' पर्यन्त पढ़कर ब्राह्मण-भोजन का संकल्प करे।

भूयसीदक्षिणा संकल्प–हाथ में जल लेकर, **'कृतैतत् हवनकर्मणः०'** से **'दातुमहमुत्सृजे'** तक पढ़कर भूयसी-दक्षिणा का संकल्प करे।

कपूर की आरती–(पृष्ठ ७९ या ८० पर पढ़े) तथा **'कर्पूरगौरं०'** यह श्लोक पढ़कर भगवान् सत्यनारायण की आरती करे।

मन्त्रपुष्पाञ्जलिः—**हस्ते पुष्पाणि गृहीत्वा,**

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याःसन्ति देवाः।।

'ॐ सत्यनारायणाय नमः' इत्युक्त्वा मन्त्रपुष्पाञ्जलिर्दद्यात्।

आवाहितदेवतानां विसर्जनम्—**हस्तेऽक्षतानि गृहीत्वा,**

यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम्। इष्टकाम-समृद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च।।
गच्छ-गच्छ सुरश्रेष्ठ! स्वस्थाने परमेश्वर। यत्र ब्रह्मादयो देवास्तत्र गच्छ हुताशन।।

इत्युच्चार्य, नवग्रहादीनाम्– अग्निं च विसर्जयेत्।

तिलकाशीर्वादः—

स्वस्त्यस्तु या विनाशाख्या पुण्य-कल्याण-वृद्धिदा। विनायकप्रिया नित्यं तां च स्वस्ति ब्रुवन्तु नः।।

मन्त्रपुष्पांजलि–हाथ में पुष्प लेकर, **'ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त०'** से **'ॐ सत्यनारायणाय नमः'** तक पढ़कर भगवान् के चरण-कमल में पुष्पांजलि अर्पण करे।

आवाहित देवताओं का विसर्जन–हाथ में अक्षत लेकर, **'यान्तु देवगणाः०'** एवं **'गच्छ-गच्छ सुरश्रेष्ठ०'** इन दोनों श्लोकों को पढ़कर नवग्रहादिकों का तथा अग्नि का विसर्जन करे।

इत्युक्त्वा, यजमानललाटे गन्ध-तिलकं कुर्यात्। ततो यजमानदक्षिणहस्ते–

'येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः। तेन त्वां प्रतिबध्नामि रक्षे माचल माचल॥'

इत्युच्चार्य, आचार्य रक्षाबन्धनं कुर्यात्।

पश्चात् **यजमानः–अष्टवारं 'ॐ विष्णवे नमः' इति ब्रूयात्।**

इति संक्षिप्त-सत्यनारायण-व्रत-कथा-हवनविधिः समाप्तः।

तिलकाशीर्वाद–आचार्य **'स्वस्त्यस्तु या विनाशाख्या॰'** यह श्लोक पढ़कर यजमान के ललाट में गन्ध और अक्षत लगावे। तदनन्तर **'येन बद्धो बली राजा॰'** पढ़कर यजमान के दाहिने हाथ में रक्षा बन्धन करे तथा यजमान आठ बार **'ॐ विष्णवे नमः'** कहे।

इस प्रकार संक्षिप्त-सत्यनारायण व्रत-कथा की हवन-विधि समाप्त।

मेरे दिल में गई है समाइ भक्तन की भाव भरी भक्ति-।... टेक

रीझूँ झूठे चुल्लु जल पै । बिन मोल बिकूँ तुलसी दल पै ॥

बिना प्रेम न सुधा सुहाय - भाव भरी भक्ति...।

नहीं भोग दुर्योधन के भाये । छिलका बिदुरानी के खाये ॥

गोपिन की छाछ सुहाई ॥ .... भाव भरी भक्ति...।

जो मेरो सुमिरन करि लेगो । भवसागर पार उतारि लेगो ।

बिन सुमिरन गोता खाई ।-। भाव भरी भक्ति-।

मेरे प्रेम को पन्थ निरालो है । जाइ समझे समझन हारो है ॥

तोकूँ मारग दियो बताइ ॥ भाव भरी भक्ति।

आचार्य स्थण्डिल (वेदी) में पञ्चभूसंस्कार पूर्वक अग्नि स्थापन करा तदनन्तर नवग्रह पूजन एवं कुशकण्डिका कर, ब्रह्माला

इत्युक्त्वा यजमानललाटे गन्ध-तिलकं कुर्यात्। ततो यजमान...

श्रीसत्यनारायणव्रतोद्यापनम्

यजमानः यस्मिन् कस्मिन् दिने (पौर्णमास्यां संक्रान्तौ च) कृतनित्यक्रियः शुभासने प्राङ्मुखमुपविश्य, आचम्य, प्राणानायम्य, दक्षिणहस्ते जलमादाय, 'देशकालौ सङ्कीर्त्य, मम समस्त-पापक्षयार्थम् आयुरारोग्यैश्वर्याभिवृद्धये सकल-स्वाभीष्ट-मनोरथ-सिद्ध्यर्थं श्रीसत्यनारायणप्रीतये सत्यनारायण-व्रतोद्यापनमहं करिष्ये' इति सङ्कल्प्य, गणेशाऽम्बिकापूजनं पञ्चोपचारेण विधाय, ततो विधानपूर्वकं कलशस्थापनं नवग्रहादीनां च पूजनं विधाय, आचार्य-ब्रह्मणोर्वरणं यथासम्पादित सामग्र्या कुर्यात्।

ततः सत्यनारायण-सुवर्णप्रतिमां शालिग्रामं वा षोडशोपचारेण सम्पूज्य, आचार्यः पञ्चभूसंस्कारपूर्वकं

सत्यनारायण व्रत का उद्यापन—यजमान पूर्णिमा या संक्रान्ति के दिन, प्रात:काल नित्यक्रिया से निवृत्त होकर, पूर्वाभिमुख कुशासन पर बैठकर आचमन, प्राणायाम कर, दाहिने हाथ में जल लेकर, **'देशकालौ संकीर्त्य०'** से **'सत्यनारायण-व्रतोपाद्यपनमहं करिष्ये'** पर्यन्त पढ़कर, जल भूमि पर छोड़ दे। तदनन्तर पंचोपचार से गणेश-पूजन एवं कलश-स्थापन तथा नवग्रहादि का भलीभाँति पूजन कर यथाविहित सामग्री द्वारा ग्रहशान्ति के अनुसार आचार्य एवं ब्रह्मा का वरण करे।

तत्पश्चात् भगवान् सत्यनारायण की सुवर्ण प्रतिमा (मूर्ति) अथवा शालिग्राम-प्रतिमा को षोडशोपचार से पूजन करें। आचार्य स्थण्डिल (वेदी) में पंचभूसस्कार पूर्वक अग्नि स्थापन करे। तदनन्तर नवग्रह पूजन एवं कुशकण्डिका कर, प्रज्वलित

वेद्यामग्निं स्थापयेत्। तत्पश्चात् नवग्रहपूजनं कृत्वा, कुशकण्डिकां च विधाय, समिद्धतमेऽग्नावाघाराज्यभागौ हुत्वा, नवग्रहादीनां तिल-यव-घृत-शर्करामिश्रित-शाकलेन तत्तन्मन्त्रै-र्नाममन्त्रैर्वा हवनं कुर्यात्।

तदनन्तरं 'ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पांऽ. सुरे स्वाहा।।' इति मन्त्रेण (अथवा ॐ श्रीसत्यनारायणाय स्वाहा)।

अष्टोत्तरशत-अष्टौ वा घृतेन आहुतिं प्रदाय, पुनः 'ॐ अग्ने नय सुपथा राये०' इति मन्त्रेणाऽग्निं सम्पूज्य, उत्तिष्ठन् 'ॐ स्विष्टकृते स्वाहा' इत्यनेन हुतशेषद्रव्यमेकवारेणैव जुहुयात्। पुनः 'ॐ अग्नये स्विष्टकृते न मम' इत्युक्त्वा, स्रुवाऽवशिष्टघृतं प्रोक्षणीपात्रे परित्यजेत्।

अग्नि में आघार एवं आज्य भाग का हवन कर, तिल, यव, घृत तथा शर्करामिश्रित शाकल द्वारा नवग्रहादि के तद्-तद् मन्त्र अथवा केवल नाम मन्त्र से हवन करे।

तदनन्तर **'ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे०'** अथवा **'ॐ श्रीसत्यनारायण स्वाहा'** से एक सौ आठ या आठ आहुति घृत द्वारा देकर पुन: **'ॐ अग्ने नय सुपथा राये०'** इस मन्त्र से अग्नि का पूजन कर, खड़े होकर अवशिष्ट शाकल का **'ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा'** कहकर एक बार ही अग्नि में हवन कर दे। पुन: स्रुवावशिष्ट घृत का प्रोक्षणी पात्र में **'ॐ अग्नये स्विष्टकृते न मम'** कहकर परित्याग कर दे।

ततो नवाहुतिं कृत्वा, ब्रह्मणे पूर्णपात्रं सङ्कल्पपूर्वकं प्रदाय, प्रोक्षणीपात्रस्थलजलैर्मार्जनं कृत्वा, अग्नौ पवित्रप्रतिपत्तिं च कृत्वा, आचार्यं वस्त्रादिभिः सम्पूज्य, सोपस्करां सुवर्णप्रतिमां दद्यात्।

पुनर्हस्ते जलमादाय, 'कृतस्य व्रतोद्यापनकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं यथासङ्ख्याकान् ब्राह्मणान् भोजयिष्ये' एवं 'नानानामगोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो भूयसीं दक्षिणां च दास्ये' इति संकल्प्य, ब्राह्मणभोजनं यथाविहितपक्वान्नादिना कुर्यात्। ततस्तेभ्यो दक्षिणां ताम्बूलं च प्रदाय, आशिषो गृहीत्वा, ज्ञातिभिः सह स्वयं भुञ्जीत।

इति सत्यनारायणव्रतोद्यापनं समाप्तम्।

पुन: **'ॐ भूः स्वाहा'** से लेकर **'इदं प्रजापतये न मम'** पर्यन्त पढ़कर घृत की आहुति दे तथा संकल्प पूर्वक ब्रह्मा को पूर्णपात्र प्रदान कर, प्रोक्षणीपात्र स्थित जल से मार्जन एवं अग्नि में पवित्र प्रतिपत्ति (छोड़) कर, वस्त्रादि से आचार्यादि का पूजनपूर्वक यथालंकृत सुवर्ण प्रतिमा प्रदान करे।

तदनन्तर दाहिने हाथ में जल लेकर **'कृतस्य व्रतोद्यापनकर्मणः०'** से लेकर **'भूयसीं दक्षिणां च दास्ये'** तक संकल्पवाक्य पढ़कर पक्वान्नादि से ब्राह्मण भोजन करावे। तथा उन्हें दक्षिणा एवं ताम्बूल आदि देकर उनसे आशीर्वाद ग्रहण करे। पुन: बन्धु-बान्धवों के साथ स्वयं भोजन करे।

इस प्रकार हिन्दी टीका सहित सत्यनारायणव्रतोद्यापन समाप्त।

सत्यनारायणाष्टकम्

आदिदेवं जगत्कारणं श्रीधरं, लोकनाथं विभुं व्यापकं शङ्करम्।
सर्वभक्तेष्टदं मुक्तिदं माधवं, सत्यनारायणं विष्णुमीशं भजे॥१॥
सर्वदा लोक-कल्याण-पारायणं, देव-गो-विप्र-रक्षार्थ-सद्विग्रहम्।
दीन-हीनात्म-भक्ताश्रयं सुन्दरं, सत्यनारायणं विष्णुमीशं भजे॥२॥
दक्षिणे यस्य गङ्गा शुभा शोभते, राजते सा रमा यस्य वामे सदा।
यः प्रसन्नाननो भाति भव्यश्च तं, सत्यनारायणं विष्णुमीशं भजे॥३॥

आदिदेव (सर्वदेव प्रधान), जगत्कारणभूत, लक्ष्मीपति, त्रिलोक के स्वामी, विभु, त्रिलोक में व्याप्त, कल्याणकारी, अपने भक्तों के समस्त मनोरथों को पूर्ण करने वाले, मुक्तिप्रद, माया के पति, विष्णुरूप, सत्यनारायण प्रभु का मैं भजन करता हूँ॥१॥

निरन्तर त्रिलोक के कल्याण करने में तत्पर, देव, गो, ब्राह्मण की रक्षा के लिए अवतार धारण करनेवाले, अपने दीन-हीन भक्तों के आश्रय प्रदायक, सुन्दर स्वरूपवाले, विष्णुस्वरूप, सत्यनारायण प्रभु का मैं भजन करता हूँ॥२॥

जिन प्रभु के दाहिनी ओर मोक्षप्रद गंगा एवं बायीं ओर निरन्तर रमा (लक्ष्मी) सुशोभित रहती हैं, प्रसन्न मुखवाले, सुन्दर, ऐसे विष्णुरूप, सत्यनारायण प्रभु का मैं भजन करता हूँ॥३॥

सङ्कटे सङ्गरे यं जनः सर्वदा, स्वात्म-भी-नाशनाय स्मरेत् पीडितः।
पूर्णकृत्यो भवेद् यत्प्रसादाच्च तं, सत्यनारायणं विष्णुमीशं भजे॥४॥
वाञ्छितं दुर्लभं यो ददाति प्रभुः, साधवे स्वात्मभक्ताय भक्तिप्रियः।
सर्वभूताश्रयं तं हि विश्वम्भरं, सत्यनारायणं विष्णुमीशं भजे॥५॥
ब्राह्मणः साधु-वैश्यश्च तुङ्गध्वजो, येऽभवन् विश्रुता यस्य भक्त्याऽमराः।
लीलया यस्य विश्वं ततं तं विभुं, सत्यनारायणं विष्णुमीशं भजे॥६॥

प्राणि मात्र अपनी पीड़ा एवं भय नष्ट करने के लिए स्मरण करता है तथा संकट काल में, रणस्थल में निरन्तर सत्यदेव का स्मरण करता है, ऐसे प्राणी के समस्त मनोरथ सत्यदेव प्रभु की कृपा से पूर्ण होते हैं—ऐसे विष्णु स्वरूप सत्यदेव स्वामी का मैं भजन करता हूँ॥४॥

भक्तिप्रिय भगवान् सत्यदेव, अपने सज्जन भक्तों के लिए सभी दुर्लभ, मनोवांछित फल प्रदान करते हैं। समस्त चराचर के आश्रयभूत, विश्वम्भर, ऐसे विष्णु स्वरूप सत्यदेव प्रभु का मैं ध्यान करता हूँ॥५॥

जिन सत्यदेव प्रभु की कृपा से सत्यनारायण की कथा में वर्णित ब्राह्मण, साधु (बनिया), राजा तुंगध्वज आदि का वर्णन किया गया है, उन सभी ने अपने अपूर्व भक्ति द्वारा अमरत्व (मोक्ष) पद प्राप्त किया। जिन प्रभु की लीला से समस्त विश्व का विस्तार हुआ, इत्थंभूत सर्व-व्यापक विष्णुरूप सत्यदेव भगवान् का मैं ध्यान करता हूँ॥६॥

येन चाऽऽब्रह्म-बाल-तृणं धार्यते, सृज्यते पाल्यते सर्वमेतज्जगत्।
भक्तभावप्रियं श्रीदयासागरं, सत्यनारायणं विष्णुमीशं भजे।।७।।
सर्वकामप्रदं सर्वदा सत् प्रियं, वन्दितं देववृन्दैर्मुनीन्द्रार्चितम्।
पुत्र-पौत्रादि-सर्वेष्टदं शाश्वतं, सत्यनारायणं विष्णुमीशं भजे।।८।।
फलश्रुतिः– अष्टकं सत्यदेवस्य भक्त्या नरः, भावयुक्तो मुदा यस्त्रिसन्ध्यं पठेत्।
तस्य नश्यन्ति पापानि तेनाऽग्निना, इन्धनानीव शुष्काणि सर्वाणि वै।।९।।

इति सत्यनारायणाष्टकं सम्पूर्णम्।

जिन समर्थ प्रभु द्वारा आब्रह्म (ब्रह्मपर्यन्त) कोमल तृण एवं समस्त ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ है, जो समस्त चराचर की रक्षा एवं संहार करते हैं, अपने भक्तों के भावपूर्ण भक्ति द्वारा शीघ्र प्रसन्न होने वाले, दयासागर—ऐसे सत्यनारायण प्रभु की मैं वन्दना करता हूँ।।७।। सभी कामनाओं को पूर्ण करनेवाले, अपने सज्जन भक्तों के अत्यन्त प्रिय, निरन्तर देवगण एवं ऋषि-महर्षियों द्वारा वन्दित तथा पूजित, अपने भक्तों के लिए सदा-सर्वदा पुत्र-पौत्रादि इष्ट-फल प्रदायक, विष्णुस्वरूप सत्यदेव भगवान् का मैं पूजन करता हूँ।।८।।

फलश्रुति–जो भक्त अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक भावयुक्त, भक्ति द्वारा सत्यदेव भगवान् के इस अष्टक का प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकाल पाठ करता है, उसके सभी ताप-पापादि उसी प्रकार नष्ट होते हैं, जिस प्रकार शुष्क (सूखी) लकड़ी को अग्नि सभी को जलाकर नष्ट कर देती है।।९।।

इस प्रकार पण्डित श्री शिवदत्तमिश्र शास्त्रीकृत 'विष्णुप्रिया' हिन्दीटीका सहित श्री सत्यनारायणाष्टक समाप्त।

श्रीजगदीश्वरजी की आरती

जय जगदीश हरे, प्रभु जय जगदीश हरे। भक्त जनों के संकट, क्षण में दूर करे॥ टेक
जो ध्यावै फल पावे, दुःख बिनसे मन का। सुख-सम्पति घर आवे, कष्ट मिटे तन का॥ जय...
मातु-पिता तुम मेरे, शरण गहूँ किसकी। तुम बिन और न दूजा, आस करूँ जिसकी॥ जय...
तुम पूरण परमात्मा, तुम अन्तरयामी। पारब्रह्म परमेश्वर, तुम सबके स्वामी॥ जय...
तुम करुणा के सागर, तुम पालन-कर्ता। मैं मूरख खल कामी, कृपा करो भर्ता॥ जय...
तुम हो एक अगोचर सबके प्राणपती। किस विधि मिलूँ दयामय! तुमको मैं कुमती॥ जय...
दीन-बन्धु दुःखहर्ता तुम रक्षक मेरे। अपने हाथ उठाओ द्वार पड़ा तेरे॥ जय...
विषय-विकार मिटाओ, पाप हरो देवा। श्रद्धा-भक्ति बढ़ाओ, सन्तन की सेवा॥ जय...
श्रीजगदीशजी की आरती जो कोई नर गावे। कहत शिवानंद स्वामी, सुख संपति पावे॥ जय...

श्रीजगदीश्वरजी की आरती समाप्त।

श्रीसत्यनारायणजी की आरती

जय लक्ष्मी रमणा श्रीलक्ष्मी रमणा। सत्यनारायण स्वामी जन पातक हरणा॥जय०॥१॥
रतन जड़ित सिंहासन अद्भुत छवि छाजे। नारद करत निराजन घण्टा ध्वनि बाजे॥जय०॥२॥
प्रकट भये कलिकारण द्विज को दरशदियो। बूढ़ो ब्राह्मण बन के कञ्चन महल कियो॥जय०॥३॥
दुर्बल भील कठारो जिन पर कृपा करी। चंद्रचूड़ एक राजा उनकी विपति हरी॥जय०॥४॥
वैश्य मनोरथ पायो श्रद्धा तज दीनी। सो फल पायो प्रभुजी की फिर स्तुति कीनी॥जय०॥५॥
भाव-भक्ति के कारण छिन-छिन रूपधर्‍यो। श्रद्धा धारण कीनी तिनकी काज सर्‍यो॥जय०॥६॥
ग्वाल-बाल संग राजा वन में भक्ति करी। मन वांछित फल दीन्यो दीन दयाल हरी॥जय०॥७॥
चढ़त प्रसाद सवायो कदली फल मेवा। धूप-दीप तुलसी से राजी सतदेवा॥जय०॥८॥
सत्यनारायणजी की आरती जो कोई नर गावे। कहत शिवानन्द स्वामी मनवाञ्छित फल पावे॥जय०॥९॥

श्रीसत्यनारायणजी की आरती समाप्त।

पुस्तक प्राप्ति स्थान- **रूपेश ठाकुर प्रसाद प्रकाशन**

कचौड़ीगली, वाराणसी-1

मुद्रक-भारत प्रेस, कचौड़ीगली, वाराणसी—221001